प्रकाशक
भारतवासी प्रेस
दारागंज—प्रयाग

मूल्य १||)
सन् १९४८
द्वितीय संस्करण

पं० प्रतापनारायण चतुर्वेदी,
भारतवासी प्रेस, दारागंज-प्रयाग

महाकवि सोमनाथ

आधुनिक विज्ञापन के युग से दो शताब्दी पूर्व काव्याचार्य सोमनाथजी ने हिन्दी संसार की जो सेवा की वह उनको अमर रखने के लिये पर्याप्त है परन्तु दुर्भाग्य से अब तक उनके ग्रंथ प्रकाशित ही नहीं हुए।

प्राचीन-काल के हिन्दी कवियों ने हमको अमूल्य रत्न दिये परन्तु वे आजकल की विज्ञापनबाजी से कोसों दूर थे। उस समय तो अपने को छिपाने में ही गौरव समझा जाता था। बहुतेरों ने तो अपने को ऐसा छिपाया कि आज तक उनका कोई पता ही न चल सका। ऐसी ही छिपी हुई विभूतियों में से कविवर सोमनाथजी थे, जिनके ग्रंथों को देखकर आज उनको आचार्यों की श्रेणी में स्थान दिया जाता है। श्रद्धेय स्व० मिश्रबन्धुओं की सम्मति में दशाङ्ग कविता समझाने में जितने सोमनाथजी सफल हुए हैं उतना कोई दूसरा नहीं। परन्तु खेद है कि इनके ग्रंथों का प्रकाशन अब तक हिन्दी संसार ने नहीं किया। यहाँ तक कि बहुधा साहित्यिक इतिहास के लेखकों ने अपने वृहत्काय ग्रंथों में इनका नामोल्लेख भी नहीं किया। इससे अधिक कृतघ्नता का और क्या उदाहरण हो सकता है।

सब से प्रथम भारतवासी प्रेस ने १९३९ ई० में इनकी

'रासपंचाध्यायी' नाम की पुस्तिका प्रकाशित की थी। उसके बाद श्रीबनारसीदासजी के उद्योग से श्रीभवानी शंकरजी याज्ञिक ने अपनी अमूल्य सम्पत्ति अर्थात सोमनाथजी के 'रस पीयूष निधि' की हस्तलिखित प्रति मुझे प्रतिलिपि करने के लिये कुछ काल के लिये सौंप दी। प्रतिलिपि करने में मुझे अनुमान से कहीं अधिक समय लग गया जिसके कारण श्री याज्ञिकजी बहुत दुखी हुए, इसका मुझे अपार दुख है और इसके लिये उनसे क्षमा याचना करने पर भी मुझे किसी प्रकार पूर्णतया संतोष नहीं हो पाया।

यह उनकी ही कृपा का फल है कि महाकवि सोमनाथ की कुछ कृतियाँ आपकी सेवा में उपस्थित की जाती हैं जिसके लिये मैं श्री याज्ञिकजी का हृदय से आभारी हूँ।

मेरी इच्छा थी कि सोमनाथजी के रीति ग्रंथ 'रसपीयूष निधि' का प्रकाशन किया जाय, परन्तु आधुनिक युग रीति काव्य को नहीं चाहता। यद्यपि मेरा विश्वास है कि कला, कला के ही लिये होती है। यदि उसमें वास्तविक सौन्दर्य है तो वह हर समय के लिये उपयुक्त है, कला पुरानी नहीं होती और "ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैनन त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई।" बहुत दिनों से मैं इसी उथल पुथल में था कि इसी बीच एक वर्ष के अन्दर भारतवासी प्रेस के स्वामी व रास-पंचाध्यायी के प्रकाशक श्री[illegible]नारायणजी चतुर्वेदी ने मुझ से अनेकों बार आग्रह किया कि सोमनाथजी की कुछ कविताओं

का एक छोटा सा संकलन अवश्य प्रकाशित कराया जावे। अतः उसका प्रतिफल यह आपकी सेवा में उपस्थित है। यदि हिन्दी संसार ने इसे अपना कर रसपीयूषनिधि के प्रकाशन का प्रयत्न किया तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा। ईश्वर वह दिन शीघ्र लावे। जब इन महाकवि के सब ग्रंथ कंदरों में से निकल कर हिन्दी संसार के हाथों में दिखाई दें।

कवि-वंश परिचय

ठा० शिवसिंहजी ने, शिवसिंह सरोज में सोमनाथ, शशिनाथ तथा नाथ को पृथक् २ कवि माना है और इनके अतिरिक्त एक शोभनाथ कवि की और कल्पना की है। प्रारम्भ में जब कोई साधन उपलब्ध नहीं थे, ऐसा भ्रम हो जाना एक मामूली सी बात थी। जहाँ "सोमनाथ" कहै को "सोभनाथ कहै" समझा कि 'सोभनाथ' कवि की कल्पना हो गयी। सोभनाथ के नाम से जो कविता दी गयी है वह सोमनाथ जी ही की है। वास्तव में सोभनाथ नाम के कोई कवि नहीं हुए। सोमनाथ जी ने कवित्त घनाक्षरी में अपना नाम सोमनाथ तथा सवैया में शशिनाथ रक्खा है। इनके ग्रन्थों के पढ़ने से पता लगता है कि इन्होंने सोमनाथ, नाथ तथा शशिनाथ नाम से कविता की है।

सोमनाथ जी ने रसपीयूषनिधि ग्रंथ में अपना वंश परिचय इस भाँति दिया है:—

मिश्र नरोत्तम नरोत्तम, भये छिरौरा वंश।
रामसिंह के मंत्रगुरु, माथुर कुल अवतंश॥

तिनके पुत्र प्रसिद्ध देवकी नन्दन भाये।
विद्या बुद्धि समुद्र जगत उत्तम जस लाए॥
तिनके अनुज अनूप एक श्रीकंठ सुहाए।
ताके जागे भाग जिनन वे दरसन पाए॥
उपजे नन्दन मिश्र के चारि पुत्र सुखदानि।
नीलकंठ मोहन बहुरि मिश्र महामणि जानि॥
चौथे राजाराम पुनि, निज मन में पहिचानि।
सबै भाँति लायक सबै, निपट रसिक उर आनि॥

काम अवतार से अनूप अति रूप करि,
सीलकर सुन्दर सरद सुधाधर से।
कविता में व्यास के समान कहि सोमनाथ,
युद्धरीति जानिवे में पारथ से दरसे॥
बुद्धि-करि सिन्धुर-बदन के समान अरु,
उद्धत उदारता में भूमि सुरतरु से।
सिद्धता में विमल वसिष्ठ मुनिवर से औ,
जोतिस में नीलकंठ मिश्र दिनकर से॥

तिनके पुत्र अनन्दनिधि, बड़े उजागर जानि।
जिनको सुयश दिगन्त लौं, महा उजागर मानि॥
गंगाधर तिनके अनुज गंगाधर परमान।
सोमनाथ तिनके अनुज, सबतें निपट अजान॥

यह माथुर चतुर्वेदी छिरौरा वंश के थे। माथुर चतुर्वेदियों में छिरौरा और मिश्र का एक ही गोत्र होता है और बहुधा छिरौरा अपने को मिश्र कहा भी करते हैं। इसी से ऊपर छिरौरा वंश में नरोत्तम मिश्र का होना कहा गया है, ऐसा अनुमान होता है।

कविता काल तथा जन्म काल

बालक सोमनाथ मथुरा में ही रहे। पश्चात् भरतपुर के राजा बदनसिंह के पुत्र राजा सूरजमल तथा उनके भाई प्रताप-सिंह के दर्बार में अपनी कविता-कौमुदी छिटकाते रहे। जब कुँअर प्रतापसिंह को उनके पिता ने 'वेरि' का राज्य दिया, तब उनके साथ सोमनाथ जी वेरि चले आये और वहीं रह कर कविता करते रहे। सोमनाथजी ने रसपीयूषनिधि यहीं सं० १७९४ वि० में समाप्त किया। यह रीति का अत्युत्तम ग्रंथ है। इसकी प्रौढ़ता से विदित होता है, कि यह ग्रन्थ उन्होंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने पर लिखा होगा। यदि यह माना जाय कि यह ग्रन्थ उन्होने ५० वर्ष की आयु में लिखा था तो इनका जन्म सं० १७४४ वि० के लगभग होता है।

सं० १८१२ वि० तक इनके ग्रन्थों के समाप्त होने का पता चलता है, इसलिये इनका कविता काल १७८० से १८१८ तक अनुमान किया जा सकता है।

शिवसिंह सरोज में इनका कविता काल सं० १८८० दिया है जो इस अनुमान से अशुद्ध प्रतीत होता है।

ग्रन्थ

अब तक सोमनाथ जी के नीचे लिखे हुए ग्रन्थों का पता चला है, परन्तु खेद है, कि इनमें से अब तक रासपञ्चाध्यायी को छोड़कर कोई भी प्रकाशित नहीं हुआ।

(१) शशिनाथ विनोद—(शिव पार्वती विवाह)

(२) कमलाधर

(३) रसपीयूष निधि—(रीति का उत्तम ग्रन्थ, इसकी प्रति मेरे पास है)

(४) व्रजेन्द्र विनोद

(५) माधव विनोद—(भवभूति कृत मालती-माधव नाटक का भावपूर्ण अनुवाद)

(६) ध्रुव विनोद

(७) प्रेम पचीसी

(८) वाल्मीकि रामायण के अयोध्या कांड, अरण्य कांड, किष्किन्धा तथा सुन्दर कांड का अनुवाद।

(९) रास पंचाध्यायी

(१०) स्फुट कविता—

भाषा

सोमनाथ जी के ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि इनकी भाषा विशुद्ध व्रजभाषा है। उसमें मधुरता की पुट जगह जगह पर मिलती है। यह महाशय अनुप्रास और यमकादि अलंकार के पीछे हाथ धोकर नहीं पड़े हैं। उन्होंने प्रधानता भावों को ही दी है और अनुप्रास आदि उनके साथ अपने आप खिच आये से जान पड़ते हैं। इनकी भाषा में ओज तथा प्रसाद गुण अधिक है। संस्कृत शब्दों के स्थान पर इन्होंने व्रजभाषा के शब्दों का ही अधिक प्रयोग किया है, जिससे इनकी भाषा में

और भी अधिक माधुर्य आ गया है। इनकी भाषा में प्रवाह भी खूब है।

सोमनाथ जी के ऊपर कुछ विद्वानों की सम्मतियाँ

सोमनाथ जी की कविता अत्यन्त सरस और सरल है। इनकी भाषा विशुद्ध व्रजभाषा है। शब्दालङ्कार तथा उच्च नवीन भावों से परिपूर्ण इनकी अपूर्व कविता को देखकर कहना पड़ेगा, कि यह हिन्दी-साहित्य के बहुत उत्तम तथा उच्च कोटि के कवि हैं। इनकी पद्य-रचनाशैली निर्दोष तथा रसमय है। वाल्मीकि रामायण सरीखे बृहत् ग्रन्थ के अत्युत्तम अनुवाद से आपने हिन्दी साहित्य के भंडार को अलंकृत किया है। सोमनाथ जी संस्कृत के बहुत अच्छे ज्ञाता थे, तभी तो ऐसे ऐसे कठिन संस्कृत भाषा के काव्यग्रन्थों का भावपूर्ण अनुवाद कर सके हैं। सूदन कवि के यह समकालीन थे। सूदनकृत 'सुजान चरित' जिसमें सूरजमल का हाल है, प्रकाशित हो चुका है। अस्तु, यदि सूदन महाराज सूरजमल के दर्बार के भूषण थे तो सोमनाथ जी अपने पाँडित्य और विशद काव्य के कारण, प्रतापसिंह के दर्बार के केशव कहे जा सकते हैं।"

(स्व० सत्यनारायण जी कविरत्न)

चतुर्वेदी प्र० भाग-अंक १ चैत्र सं० १९८२ वि०

सोमनाथ जी का रसपीयूषनिधि रीति का बहुत ही सुन्दर

ग्रन्थ है। इसमें सोमनाथजी ने पिंगल, कविता के लक्षण, प्रयोजन, कारण और भेद, पदार्थ-निर्णय, ध्वनि, भाव, रस रसाभास भावाभास, दूषण, गुण, अनुप्रास, यमक, चित्रकाव्य और अलंकार कहे हैं। पदार्थ निर्णय में देवजी की भाँति इन्होंने भी वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य के अतिरिक्त तात्पर्य भी माना है। रस का निम्नलिखित लक्षण इन्होंने बहुत यथार्थ दिया है—

सुनि कवित्त कौं चित्त मधि, सुधि न रहै कछु और।
होय मगन वहि मोद में, सो रस कहि सिर मौर॥

शृंगार रस के अन्तर्गत नायिका-भेद भी बहुत विस्तारपूर्वक कहा गया है। रसों के पीछे प्रतापसिंह के हाथी और घोड़ों का अच्छा वर्णन हुआ है। सोमनाथ जी ने दशाङ्ग कविता को इस एक ही ग्रंथ में बहुत उत्कृष्ट प्रकार से दिखा दिया है। श्रीपति और दासजी के सिवा इनका रीति ग्रन्थ प्रायः और सब आचार्यों के रीतिग्रन्थों से रीति के विषय में श्रेष्ठ है। प्रत्येक विषय को जैसी साफ़ और सुगम रीति से इन्होंने समझाया है, वैसा, कोई भी कवि नहीं समझा सका है। कविता से अपरिचित पाठक भी इस ग्रन्थ को पढ़कर दशाङ्ग कविता समझ सकता है। हमारी समझ में आचार्यता की दृष्टि से देखने पर केवल चार सत्कवियों ने दशाङ्ग कविता का वर्णन साफ़ और सुन्दर किया है; अर्थात् देव, श्रीपति, सोमनाथ और दास। इन सब में समझाने की रीति सोमनाथ जी की प्रशंसनीय है। केशवदास और कुलपति मिश्र भी आचार्य हैं परन्तु

एक तो उन्होंने दशाङ्ग कविता नहीं कही और दूसरे इन दोनों की कविता कठिन है। रसपीयूषनिधि काव्योत्कर्ष में भी प्रशंसनीय है; आकार में यह दास के काव्य निर्णय से सवाया होगा।

सोमनाथजी की भाषा शुद्ध व्रजभाषा है, उसमें मिलित वर्ण बहुत कम आने पाये हैं, और समस्त ग्रन्थ बहुत ही मधुर भाषा में लिखा गया है। इनको यमक, अनुप्रास आदि का इष्ट न था और ये उचित रीति से अपनी कविता में उनका व्यवहार करते थे। शब्दों के स्वरूप में ये महाशय शुद्ध संस्कृत के स्थान पर हिन्दी की रीति अधिक पसन्द करते थे। वृन्दावन की जगह ये बिंदावन ही लिखते थे।

× × × इनकी रचना निर्दोष है और एकरस बनती चली गयी है ऐसा नहीं, कि कहीं बहुत उत्तम हो और कहीं बहुत शिथिल पड़ गयी हो। इनकी भाषा बहुत ही सन्तोषजनक है। आप दासजी के समकक्ष कवि हैं।

(मिश्र-बन्धु विनोद)

कविता के कुछ नमूने

सोमनाथ जी के वंश परिचय के साथ साथ यह भी आवश्यक है कि उनकी कविता से भी पाठकों को परिचित कराया जावे, इसी विचार से कुछ छन्द यहाँ पर दिये जाते हैं।

दिवाली की अमावस्या की रात्रि में चन्द्रमा के अभाव के कारण, तारागण समुदाय की एक अनोखी द्युति हो जाती है।

उनको दुप दुप करते देखकर कौन सा विरह-तप्त-हृदय होगा, जो तिलमिला न उठे। इसी रात्रि में, तारागणों से उद्दीप्त होकर कृष्ण महाराज ने बरसाने के लिये जो अभिसार किया है, उसका वर्णन सोमनाथ जी ने बड़े अनूठे ढंग से किया है !—

चारु निहारि तरैय्यन की दुति,
लागौ महा बिरहातन तावन।
ए 'शशिनाथ' सुजान सुनौ,
उन सूल गिनै नहिं कज से पाँयन ॥
पीत दुकूल में फूलन लै,
अलवेलि की प्रेम की सिद्धि बढ़ावन।
कान दिवारी की रैनि चले,
बरसाने मनोज को मंत्र जगावन ॥

सोमनाथजी का अभिसार का यह वर्णन कितना अच्छा है। 'तरैयन की दुति' देखते ही विरह, हृदय को तप्त करने लगा। फिर क्या था बरसाने को प्रस्थान करना ही पड़ा। ऐसे समय काँटों की किसे पर्वाह। ऐसे अवसरों पर तो लोग मुर्दों पर बैठकर सरिता पार कर जाते हैं, तथा साँप को रस्सी मान, उसके सहारे, प्रेमिका की छत पर पहुँचते हैं। कैसी स्वाभावोक्ति है कि 'उन सूल गिनै नहिं कंज से पाँयन'। मंत्रसिद्धि के लिये उपयुक्त दिवारी की ही रात्रि लिखकर कवि ने अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है। मनोज का मंत्र जगाने में र इच्छा ही इसमें स्थायी भाव है। तरैय्यन की दुति' उद्दीपन है बरसाने स्थित राधिका आलम्बन विभाव है। अभिसार अनुभाव

भूल गिनै नहि कंज से पाँयन में उत्सुकता व भावोन्माद प्रगट है इसलिये यह संचारी हुए। इस भाँति इस छन्द में शृङ्गार रस का भली भाँति परिपाक हुआ है।

गुप्ता-वर्णन

आई सब अंगन दुकूल सजिवे की बानि,
मति हू न भूषण बनाए अलसाति है।
तुमही बताओ परोसिन हो प्यारी न तो,
औरन के बूझिबे को बानी ललचाति है॥
बेर बेर सुघर सहेलिन पै सीखी तऊ,
कहा करों तीखी कँगही सों न बसाति है।
कबहुँक भूले निज कर सों उरोजन पै,
बारन के ऐंछत खरौंट लगि जाति है॥

नायिका के उरोजों पर नखक्षत प्रत्यक्ष हैं जिससे उसका नायक से मिलने का सन्देह हो सकता है। मुलज़िम, मय माल के गिरफ़्तार है। ऐसे समय देखिये कैसी सफ़ाई से बचत की जाती है, इस सम्मिलन को कैसी चतुराई से छिपाया जाता है। वह अपनी पड़ोसिन से कहती है, कि क्या करूँ? सखियों के सिखाने पर कपड़े और गहने पहनना तो जैसे तैसे मैं सीख गयी हूँ, परन्तु बालों का ऐंछना मुझे अब तक नहीं आया। बहुत कुछ करती हूँ पर उस तीखी कँगही से कुछ बस ही नहीं चलता। कभी कभी तो ज़रा ही भूलने पर, अपने हाथ से बाल ऐंछते समय, झटका लगते ही कँघी से उरोजों पर खरौंट

लग जाती है। इस समय भी जो क्षत मौजूद हैं, वे इसी कँघी की करतूत है। आप लोगों को अब मुझे बालों का ऐंछना सिखा देना चाहिये।

अब देखिये मदन-मल्लाह की सलाह से नायिका रूप-सागर की थाह ले रही है, कैसी मधुर है:—

कुन्दन के रंग अंग जोबन तरंग राजै,
उरज उतंग छीन लंक छबि देत है।
बादले की सारी मुख चंद उजियारी तामें,
न्यारी दुति दसन की हसन समेत है।
'सोमनाथ' निरखि सुजान अँगिरानी प्यारी,
ऊँचे भुज जोरि ग्रीवा मोरि हित चेत है।
मदन मलाह की सलाह सों उछाह भरी,
ठाड़ी रूपासागर की मानौं थाह लेत है॥

कैसी अनोखी कल्पना है, बस सहसा वाह वाह निकल पड़ती है। सुजान को देखकर ही अँगड़ाने की क्रिया की गई है। उनको देखते ही मदनोत्पत्ति हुई, जिसके फलस्वरूप उसने अँगड़ाई ली। इसके लिये मदनमल्लाह की सलाह कहना कितनी उपयुक्त कल्पना है; कितनी दूर की कौड़ी लाई गई है। सागर की थाह के लिये मल्लाह की सलाह उचित ही है।

उम्मेद पर दुनिया कायम है। मनुष्य नित्य नये मंसूबे बांधा करता है। क्षण क्षण पर शेखचिल्ली के से किले बनाता है, परन्तु अन्त में उसको निराश ही होते हुए देखा जाता है। कमन्द ऐसी ही जगह आ कर टूटती है जब कि, लबे-बाम केवल दो

एक ही हाथ रह जाती है। जिस समय मनुष्य इन आशा और निराशा के झोकों में झूलता है, उसके मन की बड़ी सूक्ष्म गति हो जाती है। इस सूक्ष्म मनोगति का वर्णन जैसा सोमनाथजी ने किया है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। देखिये बिचारे चातकों को कहाँ जाकर निराश होना पड़ा है।

दिसि बिदिसान सौं उमड़ि मढ़ि लीन्हौं नभ,
छोड़ि दीन्हें धुरवा जवासे जूथ जरिगे।
डहडहे भये द्रुम रेचक हवा के गुन,
कुहू कुहू मुरवा पुकारि मोद भरिगे॥
रहि गये चातक जहाँ के तहाँ देखत ही,
'सोमनाथ' कहै बूँदा बाँदी हू न करिगे।
सोर भयौ घोर चहुँ ओर महि मंडल में,
आये घन आये घन, आय कैं उघरिगे॥

पाठकों ने वर्षा ऋतु में, कई बार इस दृश्य का अनुभव किया होगा। अनेकों बार उनके सामने से बरसाऊ बादल बिना एक भी बूंद बरसाए निकल गये होंगे। न मालूम कितने बार चातकों को निराश होना पड़ा।

सोमनाथ जी के इस छंद को पढ़ कर, ध्यान, बरबस उस एक अधीर किसान की ओर भी खिंच जाता है, जिसने प्रारम्भिक वर्षा में अपनी खेती बो दी है, और बाद में वर्षा न होने के कारण, उसके अतृप्त नेत्र आकाश की ओर टकटकी बाँधे लगे हुए हैं। इतने में वह देखता है कि मेघ मालाएं उमड़ चली हैं, सारा नभ-मंडल मेघाच्छादित हो गया है, धुरवा भी

दौड़ने लग गये हैं। जवांसा पहिले ही जल चुका था। फिर वह देखता है कि जल-कण मिश्रित वायु के संयोग से द्रुम कुछ डह-डहे भी हो गये हैं अब क्या ? उसके हृदय में एकदम आशा का संचार होता है और फिर मोद भरे मुरवा की पुकार सुनकर उसका विश्वास और दृढ़ हो जाता है कि अब वर्षा अवश्य होगी। परन्तु हुआ क्या, बेचारे चातक मुँह उठाए के उठाए ही रह गये। मेघों को पानी बरसाना तो दूर उन्होंने बूँदा बाँदी भी नहीं की, मेघ आये और चले गये सब की आशाओं पर पानी फिर गया।

बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का,
जो काटा तो कतरए खूँ भी न निकला।
"शोर भयो घोर चहुँ ओर महिमंडल में,
आये घन आये घन, आय कै उघरिगे।"

सोमनाथ जी के इस प्राकृतिक दृश्य के अनूठे वर्णन के साथ ही साथ, उसमें अन्योक्ति कैसे अच्छे ढंग से झांक रही है। प्रतीक्षा करते २ आशाओं का संचार होना, और फिर एक दम निराश हो जाने का कैसा अनूठा वर्णन है। इस आशा और निराशा के झोकों में पड़ी हुई सूक्ष्म मनोगति का वर्णन हिन्दी के बहुत से कवियों ने स्वप्नावस्था के सहारे किया है। उनके वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर हैं; परन्तु उनमें और इस छंद में उतना ही अन्तर है जितना स्वप्न में और असल में। उदाहरण स्वरूप कुछ छंद यहाँ दिये जाते हैं:—

पौढ़ी हती पलिंगा पर मैं निशि ध्यान औ ग्यान पिया मन लाए ।
लागि गईं पलकैं पल सौं पल लागत ही पल में प्रिय आये ॥
ज्योंही उठो उनके मिलिवे कँह चौंकि परी पिउ पास न पाये ।
मीरन तौ सब सोइ कैं खोवत, मैं प्रिय पीतम जागि गँवाये ॥
(मीरा) रन

लै सपने अपने मन की दुलही उलही छवि भाग भरी सी ।
अंक निसंक सो लै परियेक लला मुख चूमि सुचारु धरी सी ॥
यों लपटी चिपटी हिय सौं जसवंत बिसाल प्रसून छरी सी ।
नैनन के खुलते वह मूरति पास परी उड़ि जाति परी सी ॥
(यशवंत सिंह)

सोवत आजु सखी सपने द्विजदेव जू आनि मिले बनमाली ।
ज्योंहि उठी मिलिवे कँह धाय, सो हाय भुजान भुजान पै घाली ॥
बोलि उठे ये पपीहन तौं लगि, पीउ कहाँ कहि क्रूर कुचाली ।
सम्पति सी सपने की भई, मिलिवो, ब्रजराज को आज को आली ॥
(द्विजदेव)

शशिनाथ विनोद में इनकी अलक की लटकनि देखिये ।

कञ्चन जटित लाल की वेंदी तातर सुरँग सजाईं ।
मृदु कपोल के निकट लाइकै कुटिल अलक छुटकाईं ॥
मनु द्वन्दी मकरन्द पान कौं मुख अम्बुज ढिग आये ।
नहिं उलझत जात नेक हूँ ऐसे महा लोभ लिपटाये ॥

अलकैं कुटिल होने पर भी जरा भी नहीं उलझती हैं । कैसी आश्चर्य घटना है और उसका कारण कविवर ने कैसा उपयुक्त बतला दिया है । कवि कहता है कि वे कहाँ उलझैं, रास्ते में उनको उलझाने वाली क्या कोई चीज़ है ? क्या मुखाम्बुज-रस-

गान से अधिक कोई वस्तु उन द्वन्दी मकरन्दों के लिये वहाँ और फिर द्वन्दता के कारण, एक मकरन्द दूसरे से पहले पहुँचन चाहता है। ऐसी लगावनी में कौन रुक सकता है, कौन मार्ग में उलझ सकता है। "नहिं उलझत जात नेकु हू ऐसे महालोभ लिपिटाए" द्वन्दी शब्द भी यहाँ पर कैसे अच्छे ढंग से लाय गया है। केवल ठूँस ठाँस नहीं है, उनकी पारस्परिक स्पर्धा को कवि ने खूब दिखाया है। इस शशिनाथ विनोद में कवि ने मंजुल कल्पनाओं द्वारा कविता का सच्चा स्वरूप दिखा दिय है। उसने संसार को सिखा दिया है कि कोमल कान्त पदावली ऐसी होती है। इस समय इसकी आलोचना करना अपना ध्येय नहीं है, उसके लिये तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की आवश्यकता है। मैं तो केवल यही कहना चाहता हूँ कि जगत जननी के नख शिख के वर्णन में कवि अश्लीलता से कितही दूर भागा है।

अलक की लटकनि के ऊपर सोमनाथजी ने एक और छं लिखा है, जिसके लोभ को मैं स्थानाभाव का ध्यान रखते हु भी संवरण नहीं कर सकता।

> सोने सौ शरीर तापै आसमानी रङ्ग चीर,
>
> औरै ओप कीन्हीं रवि रतन तरौना द्वै।
>
> सोमनाथ कहै इन्दिरा सी जगमगै वाल,
>
> गाढ़े कुच ठाड़े मान ईस जुग भौना द्वै॥
>
> कारी घुँघरारी मन्द पवन झकार लागै,
>
> फरहरे अलक कपोलन के कोना द्वै।

सो छवि अमन्द मनौ पान सुधा बिन्दु करि,
इन्दु पर खेलत फनिन्दन के छौना द्वै ॥

विरही के हृदय की भी बड़ी विचित्र दशा होती है। विरहावस्था में अपने प्रेमी के गुण गान करते २ तन्मय हो जाने की क्रिया, योग की किसी क्रिया से कम नहीं है और फिर तद्रूप हो जाना तो ईश्वर प्राप्ति के अनुभव के समान है। इस भाव पर हिन्दी कवियों ने खूब उड़ान लगाए हैं और इस प्रकार सच्चे प्रेम का स्वरूप खड़ा कर दिया है। कविवर देव कहते हैं:—

राधिका कान्ह कों ध्यान धरे तब कान ह्वै राधिका के गुन गावै।
त्यों अँसुआ बरसै बरसाने कौ पाती लिखे लखि राधे को ध्यावै॥
राधे है जात घरीक में देव, सुप्रेम की पाती लै छाती लगावैं।
आपने आपुहि में सुरझै, उरझै सुरझै समुझ समुझावै॥

रीझि २ रहसि रहसि हँसि हँसि उठै,
साँसें भरि आँसू भरि कहति दई दई।
चौंकि, चौंकि चकि चकि औंचक उचकि देव,
छकि छकि बकि बकि पूरन बई बई॥
दोउन को रूप गुन दोऊ बरनत फिरैं,
घर न थिरात रीति नेह की नई नई।
मोहि मोहि मोहन कौ मन भयौ राधामय,
राधा मन मोहि मोहि मोहन मई मई॥

किसी अन्य कवि ने भी इसी भाव पर एक उत्तम छंद लिखा है।

मैं मुरलीधर की मुरली लई मेरी लई मुरलीधर माला।
मैं मुरली अधरान धरी उन मेरी धरी मुरलीधर माला॥

मैं मुरलीधर की मुरली दई मेरी दई मुरलीधर माला।
मैं मुरलीधर की मुरली भई मेरी भये मुरलीधर माला ॥

यह छंद पूरी तन्मयता के द्योतक हैं। सोमनाथजी ने अपनी पंचाध्यायी में इस भाव पर खूब लिखा है। कृष्ण के अन्तर्ध्यान हो जाने पर गोपियाँ उनको बन, उपवन, सर, निर्झर कुंज, करील चारों ओर ढूँढ़ती फिरती हैं। उनका गुणगान करते २ तन्मय हो जाती हैं और कृष्णमय होकर उनकी ललित लीलाओं को स्वयं करने लग जाती हैं। जिस गोपी ने जिस लीला का ध्यान किया, वह स्वयं कृष्णमयी हो कर वही ललित लीला करने लगी।

हरि ढूँढति यों सुन्दरी, प्रेम मत्त बकि बैन।
करन कृष्ण लीला लगीं, आपुस में सुख दैन ॥
बनी पूतना एक सहेली। अरु इक बनी कृष्ण अलबेली ॥
लागौ करन पयोधर पाने। मन करि बनिता रूप भुलाने ॥
अरु इक संकट बनी व्रजनारी। दूजी बनी गुबिन्द सुखारी ॥
रोय लात की मारी ताकैं। उलटी गिरी प्रेम मद छाकैं ॥
घुटुअनि चालि चलन इकलागी। मंजुल नूपुर की धुन जागी ॥
हरि अरु राम बनी द्वै भामा। और बनी द्वै सखा ललामा ॥
जाती दूर निकसि जब गैयाँ। रङ्ग रङ्ग का मोद बढ़ैयाँ
त्योंहीं आपुहि कान्हर मानैं। केरनि लगीं अनुहार खिहानैं ॥
इकने मुख सुर सों छवि छाई। उच्चनाद सों बेनु बजाई ॥
समद मतङ्ग चाल की मल्हकनि।
चलन लगीं छुटकायें अलकनि ॥

मन में कान्ह तहीं पुनि ध्यावति ।
बौरी भईं ताके गुन गावति ॥

कैसी विचित्र तन्मयता है, कृष्ण की ललित लीलाएं करते करते गोपियाँ पूर्णानन्द का अनुभव कर रही हैं कि इतने में एक सखी ने अनोखा कौतुक किया । उसने वही लीला की कि जिसके फल स्वरूप सब गोपियाँ विह्वल हो रहीं थी । अर्थात 'उच्च नाद सौं बंनु बजाई' । फिर क्या था वही वेदना, वही अधीरता "समद मतंग चाल की मल्हकनि । चलन लगीं छुटकाए अलकनि" वही "राधे ह्वै जाति घरीक में देव" वाला आनन्द यहाँ मौजूद है । इसके आगे तो कवि ने कमाल कर दिया है । जैसे कोई योगी तन्मयता की क्रियाओं का अभ्यास करते २ दुर्भाग्यवश फिर माया वश में पड़ कर अन्य सांसारिक वस्तुओं को आनन्ददायिनी समझने लग जाता है और अपने सच्चे मार्ग से विचलित हो जाता है ठीक उसी दशा का वर्णन इसके आगे किया है । गोपियाँ तन्मय हो रही है, उनको पूर्णानन्द का अनुभव हो रहा है, तद्रूप होकर स्वयं हरि की ललित लीलाएँ कर रही हैं । इतने में उनको चरण चिन्ह दिखाई देते हैं और वे उस तन्मयता के मार्ग को छोड़ कर चरणचिन्ह के ही पीछे २ भटकने लग जाता है ।

आगे चलीं सबै बौरानी । तँह हरि चरन लख्यो सुखदानी ॥
\+ + + +
नन्दलाल के ए पग लोने । सुर मुनि किन्नर के जु खिलौने ॥

देखन लगीं सबै हरषाएँ। झुकि २ झूमि २ अतुराएँ ॥
तिनही देखत आगे डगरीं। ब्रज सुन्दरी प्रेम सनि सगरीं ॥

अब क्या था और भी बड़ा माया जाल बिछा हुआ देखा, एक वार मार्ग से विचलित होने पर फिर सम्हलना कठिन हो जाता है।

आगे जाय लखैं तो रूरौ। पिय पग पास तिया पग पूरौ ॥

अब क्या था सांसारिक स्पर्धा का प्रश्न उपस्थित हो गया और सहसा उनके मुँह से निकल पड़ा।

ताहि देखि बोलीं बिलखाएँ। वह को है जाकों अपनाए ॥
हम को छाँड़ ताहि लै संगै। बन में गये समेत उमंगै ॥
हथिनी कों जैसे सँग लीन्हें। समद मतंग जाय रस भीने ॥

ज्ञान मार्ग में बस ऐसे ही विघ्न पड़ा करते हैं।

इसके आगे की कल्पनायें बस समझने ही से काम रखती हैं स्वाभाविकता भरी हुई हैं:--

अरु ह्याँ ताके आवै नडीठि, पग चिन्ह मनों धरि लई पीठि।
कै कन्धा पर लीन्हीं चढ़ाय, अति ही सनेह उर में बढ़ाय।
इहि ठौर फूल बीनत निमित्त, प्यारीहि रिझावनको सु'चत।
निज उनमि भार दै चरन अग्न। तारे प्रसून पुजन अव्यग्र।
सो आधेइ पग छिति मँझार। उघरे हैं देखौ ठार ठार।

कहाँ तक कहा जाय। 'शारद कला पार नहिं लहऊँ' इसलिये पाठकों को इन्हीं कल्पनाओं में उलझता हुआ छोड़ा जाता है।

सोमनाथ का वीररस वर्णन

बहुधा देखा गया है कि एक कवि एक ही विषय विशेष का हो कर रह जाता है। भक्ति से लबालब सुन्दर काव्य करने वाले, शृङ्गार रस की कविता करने में असफल होते हैं तो शृङ्गारी कवियों की कलम वीररस में चलती ही नहीं। वीर-रस के प्रसिद्ध कवि भूषण के शृङ्गार रस के एक ही आध छंद का पता, अब तक हिन्दी संसार को लग सका है। परन्तु सोमनाथ जी में यह बात नहीं थी। उनका भाषा पर पूरा अधिकार था, उसे जिधर चाहते घुमा सकते थे। देखिये शिकार का यह वर्णन कितना ओजपूर्ण है।

विक्रम अपार भूप वदन उदार जब,
चलतु शिकार लेश बिसरि कलेस कौं।
गरजैं नगारे परैं दरजैं पहारनि में,
लरजे बुढ़ार अंग सिमिटे फनेस कौं।
सोमनाथ कहैं हय कुंजर कतारनि तें.
रेजर जब ढूँढैं तेज दबकै दिनेस कौं।
त्रसैं अरि देस हँसै हरप्यौ महेस वेश,
धरिकै धनेस हियौ दरकै सुरेस कौ।

इससे कवि की बहुज्ञता का परिचय मिलता है; इस अतिशयोक्ति में अनुप्रास की छटा निराली है। परन्तु यह अनुप्रास, अनुप्रास के ही लिये नहीं लिखे गये हैं। यह नहीं कि

उनके लिये भावों को ठुकराया गया हो। वे तो अपने आप ही आ गये हैं।

अब युवराज सूरजमल के विक्रम का वर्णन देखिये, कैसा अनूठा है इतिहास जानने वाले कह सकते हैं, कि इस वर्णन में यथार्थता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह नहीं कि अपने आश्रयदाता की झूँठी तारीफ़ के पुल बाँध दिये हों:—

उदित रहत जाकौ, उद्धत अखंड तेज,
महा महि मंडल कौ तम खंड कर है।
खल मन होति ही रहति खल गोतिनि कै,
मित्र कमलन के घनों घमंड कर है॥
सोमनाथ कहैं भुज दंडनि के जोर बर,
दुवन उदडनि के सीस दंड कर है;
सुन्दर सुघर दखिनीन को भगार सिंह,
सूरज कुँअर है अनूठौ चण्डकर है॥

अब पाठक समझ गये होंगे कि सोमनाथ जितने शृङ्गार रस की कविता लिखने में सफल हुए हैं उतने ही वीररस की कविता मे। प्रकृति वर्णन तो इन्होने खूब ही लिखा है जिसकी छटा इनके ग्रन्थों में यत्र तत्र दिखाई देता है।

अथ रास-पञ्चाध्यायी

प्रथम अध्याय

मङ्गलाचरण

सोरठा

जय जय जय बलवीर, मदन मनोहर श्याम घन।
रमत कलिन्दी तीर, संग लिये व्रज सुन्दरिनु ॥१॥
जय शुकदेव सपूत, व्यास वंश अवतंस वर।
विहरत विधि अवधूत, नित गुविंद छवि छाक छकि ॥२॥

छन्द

जलधर[1]-रँग सब अंग, भसम लगि हुव[2] दुति[3] दुन्निय[4]।
सरसति आनन ओप[5], उदित चंदा जनु पुन्निय[6] ॥
शुद्ध सतोगुन रूप, तमोगुण उरतें धुन्निय[7]।
हरि-चरित्र बिन और बात नहिं रुचि सौं सुन्निय ॥
सिर लसति लटूरी कुटिल अति, लोचनलाल दयाल मन।
शशिनाथ सुनौ शुकदेव मुनि, आए सुख सज्जे प्रसन्न ॥३॥

---

१ जलधर—मेघ २ हुव—होगई, ३ दुति—द्युति कांति, ४ दुन्निय—दूनी ५ ओप—आभा, ६ पुन्निय—पूर्णिमा, ७ धुन्निय—विदीर्ण किया। जैसे कपास से धुन कर बिनौले दूर कर दिये जाते हैं।

लसति जटा भरि चटक सीस तैं, लटकि अंस लगि।
अरु नीरद के रंग अंग, धूसरित भस्म पगि॥
उदित चंड-कर[१] तूल[२] बदन-मंडल द्युति मंडित।
दृग विशाल हित-लाल[३] कान्हहित मत्त अखंडित॥
शशिनाथ सुनौ शुकदेव मुनि, शुद्ध सतोगुन सिद्धवर।
स्वच्छंद परीक्षित नृपति के, आये घर आनन्द कर॥ ४॥

दो०—अर्घादिक नृप ने दिये, तिन्हैं निरखि मुनि ईश।
बैठे आय निशङ्क पुनि, सिंहासन के शीश[४]॥ ५॥
तिनसौं कर युग जोरि कैं, बोल्यौ नृपति विचित्र।
हरि-चरित्र मोसों अहो, कहिये करन पवित्र॥ ६॥

सो०-श्रीशुकदेव सुजान, बिहँसि परीक्षित नृपतिसौं।
उचरी करि सन्मान, हरि-चरित्र-चरचा विमल॥ ७॥

दोहा–व्रज-वनितनि कौं प्रथम निज, दियौ हुतौ बरदान।
सो विभावरी[५] सरद की, सुन्दर लखि भगवान॥ ८॥
कियौ मनोरथ रमन को, निज माया अपनाय।
तत्क्षण चंद उदै भयौ, पूरब दिशा रचाय॥ ९॥
बड़ी वेर में तिय मिली, यातैं हिय हुलसाय।
नायक मनु मुख मंडलहि, दिय कुमकुम लपटाय॥१०॥

१—चंडकर—सूर्य २ तूल—तुल्य, समान, ३—हितलाल—प्रेम रँग में लाल ४ सिंहासन के शीश—सिंहासन का उच्चतम भाग ५ विभावरी—रात्रि।

ललित चंद्र मंडल लस्यौ, या विधि मध्य अकास।
केसरि के रँग रँगमग्यौ, श्री मुख मनौ प्रकास ॥११॥
प्रफुलित मल्ली कुमुद बन, अरु उडगननि निहार।
वंशी की धुनि मोहनी, करी श्याम प्रण पारि ॥१२॥

पादाकुल

मुरली मधुर मुकुन्द बजाई।
ताकी धुनि छिति अंबर छाई ॥
ताहि सुनत सुर मुनि किन्नर नर।
तंभित हुव खग मृग सब जलचर ॥१३॥
नारद कर तें तंत्री छूटी।
तारी जटाजूट की खूटी[१] ॥
पढ़िवौ वेद विरंच भुलानौ।
रह्यौ मूँदि दृग शक्र[२] सयानौ ॥१४॥
खैंच लियौ मन कुञ्ज-बिहारी।
लोक लाज ब्रज-तियन बिसारी ॥
निजु निजु गृह तें इहिं विधि डगरीं।
सिन्धुहिं मिलन सरित ज्यों सगरीं[३] ॥१५॥
जनु पिंजरन तें छुटीं चिरैया।
विविध रँग नहि घिरैं घिरैया[४] ॥

---

१ खूटी—खुल गई २ शक्र—इन्द्र ३ सगरी—सब ४ नहिं घिरे-घिरैयाँ—घेरने से भी नहीं घिरतीं।

रँग रँग अंबर अँग अँगनि ।
कंचन मनि भूषन के संगनि ॥१६॥
दुहत दूध इक डगरी भामिनि ।
धैनु दुहावति तैं अभिरामनि ॥
पय औटत तैं एक नवेली ।
उठि दौरी मनु कंचन वेली ॥१७॥
इक तजि करत रसोई भाजी ।
सुन्दरि नँद-नंदन हित राजी ॥
अरु इक बन्धु परोसित थारी ।
चली अंचकैं उठि नव नारी ॥१८॥
इक बालक कौं छाती प्यावति ।
तजि डगरी मन मोद बढ़ावति ॥
अरु इक पति कौं निदरि अकेली ।
चली न रोकी रही सहेली ॥१९॥
अधभूखी इक चली लुगाई ।
मनमोदक के रूप लुभाई ॥
अंग बटावति तैं इक सूरी ।
चली तिया हरि-हित[१] चकचूरी ॥२०॥
अरु इक चली लगावति अंजन ।
हियौ हस्यौ मन्मथ-मद-भंजन ॥

---

१ हरि-हित-चकचूरी—हरि के प्रेम में मस्त ।

[1]इक किंकिनि की माल बनाए ।
चली पान तजि पत्र चवाए ॥२१॥
[2]अरु इक बेसरि जटित जवाहर ।
चली साजि कैं श्रवननि जाहर ॥
पायजेब भुजबन्द बनायें ।
डगरी इक ग्वालिन छबि छाए ॥२२॥
अरु इक कर में मेंहदी लीने ।
चली एक पग जावक दीने ॥
अरु इक आड़ लगाय कपोलनि ।
चली प्रेम-कर बिकि बिनु मोलनि ॥२३॥
अरु इक हँती केस निखारति ।
त्योंहि चली सुतन मन वारति ॥
चली एक अध गूँथी बेनी ।
खुले कुंडलनि इक मृगनैनी ॥२४॥
अरु इक नूपुर अँगुरिन पहरैं ।
चली रची हरि के हित गहरैं ॥
मुक्त हार कटि में लपटायें ।
सुन्दरि चली एक अतुराए ॥२५॥

१—एक स्त्री किंकिणी को माला समझ कर गले में पहन गई, यह भावोन्माद है ।

२—यह सब भावोन्माद है ।

अरु नारायण अव्यय अनंग की,
प्यारी ये ब्रज भामिनि ।
नहिं कौन भाँति सौं लहैं पूत,
सुन भुक्ति महाअभिरामनि ॥३५॥

यह संशय तोहि उचित नाहिं,
नृप अपने चित्त मझारें ॥
है सोई मोहन ब्रह्म निरंजन,
बहु विधि सृष्टि संचारै ॥
मङ्गलकरन, अमङ्गल करत,
न, चारों वेद बखाने ।
जिहि कृष्ण नाम लीने नर जग में,
फेरि जन्म नहिं ठानें ॥३६॥

वंशी धुनि बंशी कांटे सी,
ताननि सों मन अटकै ।
तिय लाज समुद्र पछेलि मीन सी,
आइ रही न अटकै ॥
तन बने कहूँ के कहूँ आभरन,
लसत रेशमी पटकैं ।
अति घुँघुरारी कारी सटकारी,
नागिन सी लट लटकैं ॥३७॥

वलयावलित ललित मनि बन्धन,
दुंवा घूवरीखनकैं ।
तिय निपट[१] लटी कटि में, चटकीली,
कनक किंकिनी खनकैं ॥
नव अनवट नहीं बीछिया छनकें,
पाय पैंजनी झनकैं ।
[२]मनु-भूषन देत बधाई सब मिल,
होत मिलाप रमन कें ॥ ३:

अति झनकर[३] मनक भूषन की सुनकें,
मोहन लाल निहारे ।
तब डीठि परी आगे ब्रज-सुन्दरि,
जिन घर वार विसारे ॥
ते निरखन लगीं नन्द नन्दन की,
चन्द्र बदन उंजियारी ।
वर पंचवान की सहि कसनैंती,
होत हिये बलिहारी ॥ ३

तब तिनसों भगवान उच्चरे,
महंवूबी[४] दरसाई ।

१—बिल्कुल पतली, २ मानौं भूषण सब मिलकर बज बजकर रमन के मिलाप के लिये बधाई देते हैं । ३ सुन्दर झनकार, ४—प्रेम,

हे[1] निपट सगबगे[2] हिये प्रेमसों,
लाहर सजी रुखाइ ॥
तुम आई भली करी अब मोसों,
है कछु काम तिहारौ ।
सो कहो सुनों मैं अपने,
कानंनि, रंच न. ढील बिचारौ ॥ ४० ॥
यह निपट भयानक रजनी,
तामें बोलत जंतु भयाने ॥
ह्याँ तुम कों रहनों उचित नांहिने,
अधिक प्रेम . सरसाने ॥
तुम सबही जाहु उलटि ब्रज ही कों,
अति अतुराइ ठानें ॥
ह्वाँ तुम पितु मात भ्रात सुत ह्वै हैं,
विकट शोक में सानें ॥ ४१ ॥
ते ठौर ठौर ढूंढ़ेगे तुमकौं,
जब न देखिहैं नैननि ॥
तब महा शोक के सिन्धु बूड़ि हैं,
सबै छोरि कै चैननि ॥
तुम देख्यौ यह वृन्दावन सुन्दर,
द्रुम नवपत्रनि सोहैं ॥

१—है—ये, २—अधीर

विविध रंग फूलन की झूमरि,
झुकुति चित्त को मोहैं ॥४२॥
मृदु शीतल गन्ध सुगन्ध,
पवन की, आवत सुखद झकोरैं।
बोलत बानी मधुर विहंगम,
उर में साद बटोरैं ॥
पुलिन१ कलिंदी कूल कून की, —
चन्द किरनि सों धोई ।
जनु चन्द्रक चूरि बिछाई,
छिति में मकरंदनि सों मोई ॥४३॥

स०—तुम ने निरख्यौ तुलसी-वन२,
राव हरे द्रुम पत्रनि छाय रहे।
बहु रंगनि फूल खिले-चहूँ ओर,
मयंक-मयूखनि पाय रहे ॥
अरु सीतल मन्द सुगन्ध समीर,
झंकोरनि सों लहकाय रहे ।
जहँ आवन कों छिति पावन जानि,
मुनीसुर हू ललचाय रहे ॥४४॥

व० चौ०—कै मोही सों निपट प्रीति है,
ता बंधन सों उरझी

१—रेती २—वृन्दावनराज, ।

तुम आई हौ इह ठौर सुन्दरी,
सब कुटुम्ब सों मुरझी१ ॥
सो भली करी तुम ने, तुम,
लाइक, बात हुती यह योंही।
जो करति हुँती अति प्रेम मोहि सों,
कहिये ज्यौंकी त्योंही ॥ ४५
तुम तातें घर जाउ,
आपने, छिनु न अबेर लगैये२।
निजु पति सेवन करौ नेम सों,
धरम हिये अपनैये ॥
तुम बालक, बच्छ पुकारत,
ह्वै हैं, दुख को पार न पायें।
तहँ तिन्हें पयोधर प्याओ सुन्दरि,
बछरन धेनु मिलायें ॥ ४६ ॥

छप्पै—मूरख लम्पट वृद्ध और नित रोगनि मंडित।
बौना बधिर कुचालि सदा दारिद्र घमंडित ॥
झूठो चोर कुरूप बहुरि, अङ्गनि सों खंडित।
अन्ध३ अधरमी अधम रहै अति क्रुद्ध उमंडित ॥
'शशिनाथ' कहै ऐसौ जऊ पति न तऊ कुल तिय तजै।
उर अन्तर प्रीति बढ़ाय कै रीति पतिव्रत की सजै ॥४७॥

---

१ सुलककर सम्बन्ध विच्छेद कर २ देर।

दोहा—तिय जो पर पुरुषै रमैं, ठीक सो नरकै जाय।
अजस बढ़ै जग अरु नहीं, कोऊ करै सहाय ॥४८॥
आज तुम्हारो काज कछु, होयं सुकहो सुनाय।
लखिबो हँसिबो बोलिबो, आरस,१ को बिसराय ॥४९॥
तातें निजु पति सेयबो, निहचै उर में लाय॥
तुम ब्रजही कों तिय सबै, अबै जाउ अतुरायर ॥५०॥

तोमर-छंद

इहिं विधि बुद्धि निधान-उचरे वचन भगवान॥
सुनि सुन्दरी अकुलाय। तहँ गईं रहीं सीस नवाय॥
पुनि लगे फरकन होठ। रहि गईं थिर जिम ठोठ३॥
अँखियान तें चल धार। लागी सु बहन अपार ॥५२॥
बहि कैं कपोलन नीक। परि गई अञ्जन लीक॥
कितनी खुजावत कान। गुनि, कैं हिये अपमान ॥५३॥
पग-अंगुरिन-नख कोय। छिति खनति४ सोच समाय५॥
सुकिद्द गए अधर अनूप। मुरझाय गो मुख रूप ॥५४॥
कोउ अधर दसननि दब्बि। रहि गईं उरनि अगब्बि७॥
धर अँगुली कोउ नाँक। निरखै घरी सुनि शाँक ॥५५॥
कोउ आपनी लट एक। लहि हाथ में गहि टेक॥

१ आलस्य २ शीघ्रता से ३ निःसार, जड़, ४ खोदती हैं, ५ सूख गये। ६ शोक में डूबकर ६ डाट, फटकार ७ मसोसकर।

कुमनी[१] हलावति सीस। हित सहित मन्मथ-टीस[२] ॥५६॥
गद्-भरे[३] कंठनि आप। ब्रज-सुन्दरी भरि ताप॥
ब्रज नाथ सों समुहाइ। उचरी बचन समुझाइ॥५७॥
हम रावरे हित[४] काज। आई इहाँ तजि लाज॥
तुम कहे या विधि बैन। जिन माँझ विविध अचैन॥५८॥
अरु तुम्हें चहियति बात। यह निपट हृषिति गात॥
जो करो हम सों नेह। बरसाइ कैं सुख मेह॥५९॥
जो मुक्ति चाहत चित्त। तुम देव तिनहिं उचित्त॥
हम कों तुम्हारिय चाह। नंद नन्द पियस उछाह॥६०॥
अरु वेद की बतरानि। तुम कहत जो गुन खाँनि॥
पति पुत्रको निरवाह। करियै समेत सलाह॥६१॥
सो है बचन परमान। यह नाँहि झूठ बखानि॥
तिय धर्म है इहिं भाँति। जो कहत उत्तम काँति[५]॥६२॥
हम तुम्हैं पूछति धर्म्म। जो कहत वेधत मर्म्म॥
तुमकों उचित यह नाहिं। समझो हियें निजु माहि॥६३॥
दो०—तुम सब ही के प्रानपति, अव्यय पुरुष अनादि॥
इन[६] पति पितु सुत भ्रात की, वृथा करत बकवादि॥६४॥
हम नें तुम पै वे सबै, मन करि डारे वारि॥
तातैं हमको आछु भरि, दीजै बिरह बिदारि॥६५॥

---

१ बेमन २ काम पीड़ा ३ गह्वर, गद् गद् ४ प्रेम ५ उत्तम कान्ति वाले भगवान् ६ इन सांसारिक,

पद्धरी छन्द

तुम चित्त हमारे भोर साँझ।
हरि लिये साँवरे, घरनि माँझ॥
गृह काज करैंगी कौन भाइ।
कर क्यों न मानत जड़ सुभाय॥६६॥
तुम चरन कमल के पास आय।
डग हू न चल सकैं जुगल पाँय॥
हम जांहिं कौन विधि ब्रजगुपाल।
अरु कहा करैं अब अति बिहाल॥

सवैया।

रावरी हांसी विलोकन सों,
अरु बांसुरी की सुन तान तरेरी१
जाग उठी मनमत्थ की आगि,
छिनोंछिन बाढ़ति भाँति अनेरी॥
सींचौ हमैं अधरामृत सों,
'शशिनाथ' कहौ जिनि बात करेरी२॥६७॥
नातरु या विरहानल मैं,
जरि होंयगी आन्ह भभूति की ढेरी॥६८॥

पद्धरी छन्द

निज अधरामृत सों सींचि नित्त-

१ अनोखी, तिरछी २ कठोर,

हरि करौ हमें अब तृप्ति चित्त।
तुव हँसनि बिलोकनि सों प्रकास-
सुनि गान नच्यौ मन्मथ हुलास१ ॥६६॥
नहिं बिरहानलकी लपट लागि-
हम भस्म होंयगी प्रेमपागि ॥
कर ध्यान तुम्हारे पग सरोज-
अब सबही लहि हैं सहित चोज२ ॥७०॥

मुक्तादाम छंद

रमा-रमनीय अजू महाराज।
लुभात रहे देव जिहि काज॥
तिहि-पद-पङ्कज की रज आस।
करैं नित ही हम मंडि हुलास ॥७१॥
जऊ तुलसी सु भई बरमाल।
तऊ जिहिं चाहत बुद्धि बिसाल॥
तिहीं पद पंकज की रज आस।
करैं नित ही हम मंडि हुलास ॥७२॥
बने सुर किन्नर औ मुनि वृन्द।
लख्यौ जिहि चाहत पाय अनन्द॥
तिहीं पद पङ्कज की रज आस।
करैं नित ही हम मंडि हुलास ॥७३॥

---

१ तुम्हारी २ हर्ष।

विरंच महेस अरु सेस पवित्त१ ।
करें प्रभुता जिहिं के बल नित्त२ ॥
तिहिं पद पङ्कज की रज-आस ।
करें नित ही हम मंडि हुलास ॥७४॥
अजू न कछू हम जानत और ।
गुविन्द सुनों सब के सिरमौर ॥
जुहे पद पङ्कज पाइ प्रवीन ।
रहैं नित ही तिनिके सुअधीन ॥७५॥
अहो तिहि अर्थ मनोहरलाल ।
हियें अब होउ प्रसन्न गुपाल ।
प्रफुल्लित पङ्कज तौ पद पास ।
पहुच्चियहैं हम आनि प्रकास ॥७६॥
निरास भईं निजु बन्धनि तज्जि ।
लुभाय रहीं तुम सों हित सज्जि ॥
प्रकाशित पूरन चन्द समान ।
लखें तुव आनन शोभ निधान ॥७७॥
चितौंनि नरच्छियसी तिरछाइ ।
पियूष सनी मुसिक्यानि सुभाइ ॥
लखै मनमत्थ चढ़ाय कमान ।
हनै सर पञ्चहु ज्वाल निधान ॥७८॥

---

१ पवित्र २ नित्य ।

हमें निज दासिय जानि दयाल।
करौ पुरुषारथ[१] को नंदलाल॥
समीप भई जिहि कारन आय।
सिराय हियौ करियै सु उपाय॥७९॥

सवैया

मंद हँसी मुख चन्द समान,
लसै श्रुति-कुंडल-ओप[२] घनेरी।
बंक चितौनि हिये बनमाल औ,
बाँसुरी की सुनि तान लटेरी॥
बानिक यों अवलोकि लुभाय,
भई बिनु मोल बिकाय कै नेरी[३]।
आन कछू चरचा न रुचै हम,
रावरी कान्ह भयो चहैं चेरी॥८०॥

मधुभार छंद

गंधर्व जच्छ, किंनर प्रतच्छ;
अरु अमर चंद पन्नग परंद॥८१॥
बहु बेलि वृच्छ,[४] बहु बाल बच्छ;[५]
ते घेनु गीत, सुनिकैं अभीत॥८२॥
जड़ होत अंग, पुलकै सुढंग;
थहरै सरीर लहि हित[६] गंभीर॥८३॥

१ परोपकार, २ शोभा, ३ पास, ४ वृक्ष, पेड़, ५ बछड़े, ६ प्रेम,

अरु तिय खिसाति, छितनो लसाति;
यह चित मैं धार करिये विचार ॥६४॥

सवैया

मोहन! पंकज से दृग हैं इतने,
पै तकौं तिरछे मुसकाय कैं।
कोटि मनम्मथ के मथि प्रान,
करौ कत्त कान गरूर गराय कैं॥
औ 'शशिनाथ' लगैं अचकाँ जब,
कानन बाँसुरी की धुनि आय कैं।
को वह नारि जु धीर धरै उर,
प्रेम की पीर गँभीर पचाय कैं ॥६५॥

ब० चौ०

तुम ब्रज भय अरु पीर हरन कौं प्रकटे हौ हम जाने।
वह आदि पुरुष अवतरे सुरन की रक्षा कों जिय ठाने॥
अब तातें धरौ हमारे उर निज इक कर कमल सिहाने[1]।
करौ एक सों छाया सिरपै, हम तुम रूप भुलाने ॥८६॥
शुकदेव लखे बहुरि परीक्षित नृपसों नेह बढ़ाए।
इहि विधि विनती ब्रजबालनिकी सुनि भगवान सिहाए[2]॥
है जऊ आत्माराम तऊ हँसि बिहरे तिनके संगे।
लखि, प्रीतम, तिनके मुख अंबुज फूले सहित उमंगे ॥८७॥

---

१ प्रसन्न होकर, २ प्रसन्न हुए।

तिनके संग विचित्र चरित्रनि प्रकटे मुख सों भीने।
पुनि मन्द विहँसनि में दरसे दसन कुन्द छबि छीने ॥
तिन ब्रज बनितन के मंडल महियाँ१ यों नद नंन्द बिराजैं ।
ज्यों तारा मंडल मध्य अखंडित चंद सोभ२ कौं साजै ॥८८॥
विविध भाँति के गावैं गीतनि वनिता संग हजारन ।
पुनि करत आपहू गान मनोहर तान साजन बहु वारनि ॥
उर पहिरैं माल विमल वैजंती कटि पट पीत लपेटैं ।
किय वनविहार इहिविधि स्यामघन त्रिभुवन रूप झपेटैं३ ॥
जमुना कूल पुलिन सुंदर जँह फहुरे पवन सुहायो ।
चञ्चल चलित तरंग मनोहर कमलनि पुंज हलायो ॥
वर महक रह्यो सौरभ चहुँओरनि तहाँ आयहित काजे ।
किय तिनके सँग नृत्य मनमोहन गति सँगीत समाजे ॥

त्रिभंगी छंद

बहु विधि रँगनि वसन सुढंगनि,
साजैं अगनि सुख भीनै ।
कंचकन मनिवारे भूषण भारे,
लसैं अपारे पट भीने ॥
मुख चीतें४ चन्दनि, परम अमंदनि,
पूरि अनन्दनि हास करैं ।

१ मध्य, २ शोभा, ३ समेटे, साथ लिये, ४ चित्रित किये, लपेटे लगाए ।

गति लै लै नच्चहि कटितट लच्चहि[1]
प्रेम परच्चहि[2] त्रास हरैं ॥
हरित्रासन[3] गावैं पियहिं रिझावैं,
अरु निदरावैं पिक बीनें।
अधरामृत पीवें चिबुकनि छीवें[4],
छवि लखि जीवें परवीनें ॥
कबहूँ गलबाहीं, गहहि उछाहीं,
मृदु बतराहीं मलकनि[5] में।
झलकैं सुकिनारी, कंचनवारी,
अति चटकारी अलकनि में ॥
अलि तत्थेई तत्थेई थेई,
अच्छर येही उच्चारें।
कोउ मुरज[6] बजावैं रुचि उपजावैं,
बीन मिलावैं उटतारें[7] ॥
जुग बनितनि[8] बीचैं, हरि सुख सींचैं,
बदन-[9] मरीचैं विस्तारें।
कर चूरी छनकैं, बिछिया बनकैं,

---

१ लचकती हैं २ परिचय देते हैं ३ त्रास हरनेवाले, आनन्द देने वाले गीत, ४ छूते हैं ५ नखरे से मटक कर चलने की क्रिया, ६ बाजा विशेष, ७ ताल मिलाकर, ८ दो दो स्त्रियों के बीच में, ९ मुख की किरणें, रश्मियाँ या शोभा।

किंकिन झनकैं मृदुढारैं१ ॥
ढारैं निज कंधनि, नवल सुगन्धनि,
अरु मनि-बंधनि-कनक करैं३ ॥
करि बाहाँजोटी दम्पति गोटी,
यारी भारी चोट भरैं।
बिनु संकै भेंटे, भरि २ जेटैं४,
झुकनि समेटैं छल करिकैं।
लै फेरी चितवैं, मोहन मितवैं,५
हरि हित६ जितवें दुख दारकैं ॥
दरिकैं दुख सगरे, आनँद बगरं,७
मन्मथ झगरे८ सुरझाए।
कौतुक निरखैया, गगन फिरैया,
सुर ललचैया फिर आये ॥
बरसाए फूलनि चित अनुकूलनि,
सहित दुकूलनि अनमोले।
अरु बजे निसानैं मधि असमानैं,
त्रिभुवन जानैं अनतोले ॥
दो०--रतिरतिपतिकौ गरब हरि, तरकैं बिरहदरयाव९

---

१ कोमल स्वर लहरें, २ झुकायें, ३ हाथों में, ४ कोरिया ५ मोहन मित्र को, ६ हरि के प्रेम को आंखती है, ७ विस्तार किया, ८ झगड़े ९ नदी।

नन्दलाल ब्रजतियन सँग, यों बिहरे लहि दा३१ ॥
आनन्द कंद गुबिन्द सौं, पाय परम सन्मान ।
आपुन कौं जग जियन में, बढ़ती गुनी२ निदान ॥
प्रेम छाक छकि बावरी, हुव तातें ब्रजबाल ।
तब यह उरमं जानि हरि, ह्वै कै निपट दयाल ॥
सो०—गञ्जन गरब गम्भीर, भक्ति अधीनें रैन दिन ।
तिहि निमित्त बलवीर, तिहि छन अन्तर ध्यान हुव ॥

इति श्री माथुर चतुर्वेदी मिश्र सोमनाथ कवि विरचित 'श्री कृष्ण लीलावली' रास पञ्चाध्यायी प्रथमोध्याय

१ समय पाकर, २ बढ़कर समझा ।

अथ द्वितीय अध्याय

सो०— श्रीशुकदेव सुजान, बहुँरि परीक्षत नृपति सौं।
बोले बुद्धि निधान, हरि चरित्र चरचा मधुर ॥१॥
हुव हरि अन्तर ध्यान, तच्छन१ ही ब्रज सुन्दरी।
दुःखित भई निदान, बिन देखैं छवि साँवरी ॥२॥
नव हरिथन नहिं भाय, कछु बिछुरे गजराज के।
चित्त की चोप२ भुलाय, विकल होत अँग अंग ही ॥३॥
तोमर०—नँदनंद की गज चाल। अरु चन्द-बदनरसाल।
अरविंद नैन विशाल। जिनमें लसैं गुनलाल३ ॥४॥
मुसकानि मंद सुवेस। तिरछे चितौनि विसेस।
अरु वैन की मृदुतान। करिबौ मनोहरि गान ॥५॥
रस पूरिकैं बतरानि। मिलिबौ महा सुख दानि।
औरौ अनेक विहार। तिनकौं सुमिरि बहुकार ॥६॥
बिकि गईं मन अनमोल४। ब्रजबाल बिसारि५ कलोल६।
करतूति उनकी धारि। निजु चित्त में निर्धारि ॥७॥
लागी करन प्रन पारि। अपने स्वरूप बिसारि।
हरि रूप ही निजु मानि। सुख लह्यौ औसर जानि ॥८॥
हरि के चरित्र बखान। उच्चरत्ति६ सज्जित गान।

१ उसी क्षण २ उत्साह ३ लाल रेखाएं, डोरे ४ आनन्द ५ भूल-कर ६ उच्चारण।

व्रजनारि ते अतुराय । इकठौर भईं सुआय ॥९॥
निरखनि लगीं सब ठौर । नहिं लख्यौ पिय सिरमौर ।
वह छोड़ि कैं वन और । वन में गईं कर दौर ॥१०॥
जो पुरुष सबनि मँझार । रमि रह्यौ गगन प्रकार ।
द्रुम लतनि सौं पुनि ताहि । पूछति फिरी बन जाहिं ॥११॥
नदनन्द के हित१ रत्ति२ । हुव बावरी सम भ्रंत्ति३ ।
पीपर उतंग सरीर । तुम हौ परम गम्भीर ॥१२॥
निरख्यौ कहूँ नँदलाल । हमकौं बतावहु हाल ।
हम भईं निपट बिहाल । बिनु लखैं कंत कृपाल ॥१३॥
एरे प्रवीन पलास । दै तू बताय प्रकास ।
कहूं करत विपिन विहार । दरस्यौ जु नन्द कुमार ॥१४॥
हे द्रुमन में वर वृक्ष । वर तू निपट परतक्ष ।
कहुँ लखे होंय गुपाल । तौ देइ बताय दयाल ॥१५॥
तुमहूँ रहे कि बिकाय४ । लखि हँसनि लसनि सुभाइ ।
हमहें भई जिहि भाइ । बस सकलसुद्धि५ भुलाय ॥१६॥
कुरु बक अशोक उदार । पुन्नाग चम्प सुढार ।
हम तुम्हें पूछति बात । कित गयौ श्यामलगात ॥१७॥
हँसि-हरन-६ मानिनि मान । बलबीर रूप निधान ।
मुखचांद पंकज नैन । निरखे विना नहिं चैन ॥१८॥

---

१ प्रेम २ रति ३ भ्रांति ४ या तुम भी बिके से रह गये हो । ५ सुधि ६ हँसी से मानिनी का मान हरने वाले ।

तुलसी रही तुव छाय। हरि चरन परसहि पाय।
उर में महा हुलसाय। हमकों सुदेहु बताय ॥१९॥
कितकों गयौ ब्रजचंद। दुख हरन आनँद-कन्द।
हम तोहि पूछत भेद। बढ़िगो विरह को खेद ॥२०॥
वरबेलि हो सुख दानि। झुकि रही पत्र निधान
बहुरंग फूल अनन्त। दृग तूल१ निपट लसंत ॥२१॥
कहुँ परे डीठ गुविन्द। इमि हुव जू फूल अनिन्द।
हमकों बतावत क्योंन। घनस्याम सिन्धुर२ गौन ॥२२॥
हे जुही मल्लिय जाति। हे मालती सरसाति।
तुम क्यों रुखाइय ठानि। चुप ह्वै रहीं रसखानि ॥२३॥
चहियें तुम्हें यह नाहिं। करि काजु३ निज बन माँहि।
हमक जु मोहन काम। न बताय देत ललाम ॥२४॥
हे कोविदार प्रियाल। कृतमाल और रसाल।
अरु पनस, अनस उतंग। अरु बेल जामुन संग ॥२५॥
अरु अर्क बकुल कदंब। अरु और द्रुमनि कदंब४।
पर काज करन सुभाय। विधि रचे तुम सुख पाय ॥२६॥
तजिकैं जमुन को कूल। कितहूँ न जात सफूल५।
कित गयो जसुमत पूत। हितपन्थ६ में मजबूत ॥२७॥
हमसों कहो करि हेत। ह्वै हिये धर्म समेत।

---

१ तुल्य—समान, २ हाथी की समान चाल वाले, ३ अपना काम बनाकर, ४ समूह, ५ पुष्पयुक्त, आनन्दयुक्त, ६ प्रेम मार्ग।

बिनु लखें जसुमति लाल। हम भई अति बेहाल ॥२८॥
तैं वसुमती१ परवीन। ऐसौ कहा तप कीन।
ता पै धरे जु अनन्दि। हरिने चरन अरविन्द ॥२९॥
ताकौ उछाह अपार। धरि रही उर अविकार।
कैधों त्रिविक्रम पाय। बलि सों लई अपनाय ॥३०॥
ताकौ गरूर वढ़ाय; है रही मौन अघाय।
कै धरी दसन बराह। ताकौ बढ्यौ उत्साह ॥३१॥
तातें बतावति है न। हमकौं कमल दल नैन।
तन नवल नीरद रंग। बन माल मुकुट बरंग ॥३२॥
कहि री परम सुकुमारि। मृग की बधू डर२ टारि।
इत लखे आवत लाल। तिय सहित गुनति बिशाल ॥३३॥
अति ही लसें तुव अच्छ३। डहडहे जुगल प्रतक्ष।
निहुचें४ लखे घनस्याम। तुमने विनोद निधान ॥३४॥
हरि भांवती लै आय। निज संग वर्जित ताय।
इत है गये सवभंग। आवें सुगन्धि तरंग ॥३५॥
ही कुन्द की उरमाल। नँद नंद के सुरसाल।
तिय कुचनि कुंकुमलाल। ताकी सुगन्धि विसाल ॥३६॥
निहचै बतावति जाति। यह गंधि जो सरसाति।
प्रिय गये है इह राह। पूरित मनोज उछाह ॥३७॥

—:०:—

१ पृथ्वी, २ भय रहित होकर, ३ आँखें, ४ निश्चय,।

तिय वाम हत्थ गल बाहीं,
दक्षिण करसों कमल फिरावत।
हिय सनो सुगंधि माल तुलसी की,
संग मधुप छवि छावत॥
इमि विहरत निरखे तुम द्रुम नेरे,
हौ क्यों नति१ कौं ठाने।
अरु अवलोके, वे तुम, तिन हँसिकै,
यातें तुम सुख साने॥३८॥
अलि पूछों इन नव वेलिन सें,
अति आनन्द सरसानी।
निजु प्रीतम वृक्षन सौं गलबाहीं,
दै करिके लपटानी।
पै तऊ हमारे पिय गुविंद के,
कर नख छत परसानी।
मिस फूलनि के मुसक्याति मनोहर,
हम निहचै यह जानी॥३९॥

दो०—हरि ढूंढ़ति यों सुन्दरी, प्रेम मत्त वकि वैन।
करन कृष्ण लीला लगीं, आपुस में सुख दैन॥४०॥

बनी पूतना एक सहेली।
अरु इक बनी कृष्ण अलबेली॥

१ झुकाव, नम्रता।

लागी करन पयोधर पाने ।
मन करि वनिता रूप भुलाने ॥४१॥

अरु इक सकट बनी ब्रजनारी ।
दूजी बनी गुबिन्द सुखारी ॥
रोय लात की मारी ताके ।
उलटी गिरी प्रेम मद छाके ॥४२॥

तृणावर्त इक बनि ब्रजबाला ।
रज की धूंधुरि करी बिसाला ।
बालक कृष्ण बनी मुरसाला ।
लियौ उठाय ताहि तिहिं काला ॥४३॥

घुटुवनि चालि चलन इक लागी ।
मंजुल नूपुर की धुनि जागी ।
हरि अरु राम बनी द्वै बामा ।
और बनी द्वै सखी ललामा ॥४४॥

अरु इक बनी बकासुर गाढ़ी ।
हनी कान्ह बनि तिह ने ठाढ़ी ॥
अरु इक बनी अघासुर बङ्को ।
और कन्हैया बनी अशङ्की ॥४५॥

मारयो ताहि भूमि पै पटकी ।
लिये रीति उर प्रेम लंपट की ॥

जाती दूरि निकसि जब गैयाँ ।
रंग रंग की मोद बढ़ैयाँ ॥४६॥
त्यों ही आपुहि कान्हर माने ।
करन लगी अनुहारि सिहाने ॥
इक ने मुख-सुर सों छबि छाई ।
उच्च नाद सों वेनु बजाई ॥४७॥
और नारि ने करी बड़ाई ।
आछी जू आछी बनि आई ॥
काहू ने इक तिय के कंधे ।
अलबेली भुज धरि हित संधे ॥४८॥
समद मतंग चालि की मल्हकनि ।
चलन लगीं छुटकाएं अलकनि ॥
मैं हौं कान्ह कहति यों बानी ।
कैसी लागति छवि सरसानी ॥४६॥
मन में कान्ह तहीं पुनि ध्यावति ।
चौरी भई ताके गुन गावति ॥
जिन डरपौ लखि पवन झकोरने ।
अरु आघति घर्षा चहुँओरन ॥५०॥
मैं तुम कौं रक्षत हौं अबही ।
कौतुक यह निरखौ तुम सबही ॥
यों कहिकैं ओढ़नी उछारी ।

इक कर पै लीन्हीं सुकुमारी१ ॥५१॥
अरु पुनि बोली एक सुहाई।
अरे गोप सुनि हृदय महाई॥
वहूँ ओर आवै दौ लागति।
अति-ही ज्वाला जालनि जागति॥५२॥

इक छिन रहौ मूँदि कैं नैननि।
तुम कौं अब रक्षौं दै चैननि॥
अरु इक ने बहुमाला जोरी।
कर बाँधे पिय के ह्वै भोरी॥५३॥
सो अपनौ मुख रही नवाए।
डाटत ताहि कपट उर पाए॥
हरि कों यौं पूछति ब्रजनारी।
द्रुम बल्ली वृन्दावन चारी॥५४॥
आगे चलीं सबै बौरानी।
तहँ हरि चरन लख्यौ सुख दानी॥
आपुस में तब यौं बतरानी।
देखौरी तुम सबै सयानी॥५५॥
नन्द लाल के ए पग लोने।
सुर मुनि किन्नर के जु खिलौने॥

---

१ इस प्रकार उठा ली जैसे हरि ने गोवर्धन धारण किया था।

देखन लगीं सबै हरषाए।
झुकि २ झूमि २ अतुराए ॥५६॥
लखि ये धुज अम्बुज जग मंडित।
कुलिश और अंकुश अनखंडित२॥
तिनि ही देखत आगे डगरी।
ब्रज सुन्दरी प्रेम सनि सगरी ॥५७॥
आगें जाय लखें तौ रूरौ।
तिय पग पास पिया पग पूरौ॥
ताहि देखि बोलीं बिलखाऐं।
यह कोहूँ जाको अपनाए ॥५८॥
हमकों छांड़ि ताहि लै संगै।
बन में गये समेत उमंगै॥
हथिनी कौं जैसे संग लीन्हें।
समद मतंग जाय रस भीने ॥५६॥
भली भांति इन कान रिझाए।
नारायन परब्रह्म सुहाए॥
जो तजि हमैं सनेह बिसारें।
तिही अकेली संग बिहारें ॥६०॥
धनि यह रैनु जु हमने दरसी।
हरि के चरन कमल की परसी॥

ब्रह्मा रुद्र अरु लक्ष्मी जाकौं।
सीस धरैं गुनि सुद्धि कला कौं ॥६१॥

पद्धरी छंद

ता तिय के उघरे जु पांय।
ए हमैं बढ़ावत दुःख बनाय१
सब गोपिन लंइक जो अनूप।
है अधरामृत निदरन विधूप२ ॥६२॥
सो करति अकेलैं पान आप।
सुख सौं बुझाइकै मदन ताप॥
अरु ह्यौं ताके आवै न डीठ.।
पग चिन्ह मनो धर लई पीठ॥६३॥
कै कंधा पर लीन्हीं चढ़ाय।
अति ही सनेह उर में बढ़ाय॥
३तृण अंकुरित क्षण चित्त जानि।
तिय चरण गढ़ै जिनि दुःख दानि॥६४॥
इहँ ठौर फूल बीननि निमित्त।
प्यारीहि रिझावन कौं सुथित्त॥
निजु उनमि भार दै चरण अग्र।
तोरे प्रसून पंजन अव्यग्र॥६५॥

१ अत्यन्त, २ कुंदरू ३ यह सोच कर कि पृथ्वी पर निकले हुए तृण अंकुर पैरों में छिद कर दुख न दें।

सो आधेंइ पग छिति मँझार।
उघरे हैं देखौ ठार१ठार॥
अरु तिय के कुचन सिंगार हेत॥
हरि बैठे ह्यां गुनि के निकेत॥६६॥
निज करन गूंथि वेनी विशाल।
इक ठौर बैठि कैं अति दयाल॥
आत्माराम जऊ आय रत्त।
तऊ तासौं पुजयौ मदन मत्त॥६७॥
ह्वै अति गरीविनी सकल वाम।
अमरषता२ पूरित उर उद्दाम३॥
हरि प्रीतम के इहि विधि विलास।
दरसावति आपुस में प्रकास॥६८॥
मन मह्लि गोपिका ते सरब्ब४।
विचरीं सनेह सजि तजि गरब्ब५॥
जाहि सँग लीन्हैं गुविन्द।
तजि और तियन कौ हित अनन्द॥६९॥
बन माँझ गई सो तिया सरूप।
आपन कौ मानति हुव अनूप॥
जो तजि कैं औरै थल इकन्त॥
ह्यां लायौ मोकौं कामवन्त॥७०॥

---

१ जगह ब जगह २ क्रोध ३ गंभीर ४ सब ५ गर्व।

तब आगैं चलि बन में पुकारि।
उचारी कान्ह सौं गरब धारि॥
मो पै न चल्यौ अब जाय लाल।
लै जाउ मोहि जँह तुम कृपाल॥७१॥

दो०—तातिय के मन वानिकैं, बढ़्यौ गुमान समुद्र।
तब पुनि अन्तर्ध्यान हुव, श्री हरि गुननि अछुद्र१॥

सो०—सोतिय सुक्ख भुलाय, नख सिख पूरित विरह में।
दोऊ भुजनि उठाय, लागी करन विलापकौं॥७३॥

पावकुल छन्द

हाय! नाथ हा! प्रान पियारे।
हाय! ईश हा! बाहु२ उदारे॥
हाय! रमन मन भवन सुहाए।
हाय! मदन-मद मथन कहाए॥७४॥
कहाँ कौन थल जाइ बिहारे।
हित३ करि हरि कैं प्रान हमारे॥
मैं दासी तुम करुना लायक।
नाहि लखावौ मुख सुखदायक॥७५॥
और जुही गोपी गुन वारी।
ढूंढति हरि कौं विरह लतारी॥

---

१ अपार गुणी २ विशाल बाहु जो उदारता करने के लिये बढ़ीं रहती हों। ३ प्रेम।

दूरि गईं बन मद्धि सुखारी।
तन मन की सुधि बुद्धि बिसारी ॥७६॥
देखैं तौ वह ग्वालिन ठाढ़ी।
निज समान ही दुख में बाढ़ी ॥
समाचार ते ताने उचरे।
ते आपुन प्रीतम सौं सचरे ॥७७॥
सुनि कैं भईं अचम्भित गोपी।
पैठी तिहि बन में हित ओपी ॥
जहँ लगि लखी चन्द्र उजियारी।
तहँ लौं गईं रटत गिरिधारी ॥७८॥
डीठि परी जब अति अँधियारी।
कछू न सूझै राह बिसारी ॥
तहँ तैं फिरी गोपिका सगरी।
हरि में मन दीन्हैं पन अगरी ॥७९॥
ता हरि के गुन गावत आछैं।
तिही रूप ह्वै हित कौं काछैं ॥
निज निज गृह की सुरति भुलाऐं।
आईं जमुना कूल सुभाऐं ॥८०॥

सवैया

मनसत्थ मनोहर मूरति स्याम,
न क्यों अचका दरसावत हौ।

सरसाइकैं नेह अछेह[१] महा सुख,
२मेह न क्यों बरसावत हौ ॥
'शशिनाथ' गुपाल कहौ कित हौ,
विरही बिरहै परसावत हौ ॥
यह बात न चाहिये लाल तुम्हैं,
तु हमैं इतनो तरसावत हौ ॥८७॥
दो०–पुलिन[३] कलिन्दी कून की, तहँ बैठीं ब्रजबाल।
भईं ध्यान में मगन सब, आगम चहत गुपाल ॥

इति श्री माथुर चतुर्वेदी मिश्र सोमनाथ कवि विरचित 'श्री कृष्ण लीलावती' (रास पञ्चाध्यायी) द्वितीयोऽध्याय

---

१ अखंडित, २ बादल ६ रेती

अथ तृतीय अध्याय

दो०-गोपी बोली कान्ह सों, अनदेखैं अकुलाय।
प्रेम सिन्धु उमग्यौ हियें, सकी न ताहि पचाय ॥१॥

व० चौ०

हुव ब्रज में जन्म तिहारो जबतें, मोहन मंगल दानी।
ह्यां तबही तें निज भवन जानिकैं, रहतिरमा हित१ सानी।
ये गोपी कान्ह रावरी गाहक, पुलकित ह्वै अँग अँगनि।
सबदिसनविलोकतिफिरतितुम्हैंही,मानर२लगायसुढंगनि।
शरद कोकनद दल से सुन्दर, लोचन जुगल तिहारे।
तिनसौं करि तिरछौंही चितवन, बेधे हिये हमारे।
हम बिना मोल की दासी तिनकी, काहे प्रेम बिनासौ।
तुम डीठि३ परौ मंगल वर दायक, पूरन प्रेम प्रकासौ।
विष जल व्याल कपाल रक्कसा,४ पावक ते तुम रखे।
घन घहराय बेहद बरषै, तड़ित पवन मिलि अखे॥
वृषभासुर मय नन्द प्रलम्बा, ताने भय प्रगटाई।
तुम इनतैं रक्षा करी हमारी, पुरुषोत्तम जदुराई ॥४॥
तुम केवल नाहिं गोपिका नंदन, मोहनलाल पियारे।
हो साक्षी रूप सकल जीवन के अन्तरगत उजियारे।

---

१ प्रेम में सनी हुई। २ मान को ढङ्ग से लगाकर, मानरहित होकर ३ दर्शन दो ४ राक्षस।

करत प्रणाम अमर किन्नर हूँ तुमकौं नर पुनि को है।
अघफंद निकंदन जाहर जग में, तुम एकै[1] सरसो है॥
भुवभार उतारन जाँचे[2] विधिने, तुम जग रक्षा काजैं।
तब उदित भये जदुकुल में सूरज, नूत[3] तेज कौं साजैं॥
तुम निसिवासर तिनशुभ दायक, जदुनायक छविछाजैं।
विकट कोटि कष्टन के काटन अपनी शक्ति समाजैं॥
तुम चरन कमल की सरन होत, जो तिनकौं डरन सतावैं।
हरत लक्ष्मी; हस्थ ग्रहन, समरत्थ निगम यौं गावैं॥
सो पूरन करन मनोरथ, निज कर धरिये शीश हमारे।
हम कपट भुलाय असीसति, प्यारे मिलि विहरौ सुख धारे॥
व्रज जन के तुम दरद दरैया, बनतनि हियौ हरैया।
मन्द मन्द मुसक्यानि रावरी, धं.रज गरव गरैया॥
हम निपट किंकरी कान्ह विहारी, तिनसौं नेह रचाओ।
तुम इत उत मति परचाओ[4] मनकों, हमकौं मन दरसाओ॥
जे करें प्रनति तिनके अघहारी, मंगल छैल छबीले।
गायन के अनुचारी, श्री गृह, कल्पद्रुम सम शीले[5]॥
पुनि क्रूर गरल हरन काली के, फन फन नृत्य करैया।
ते चरन कमल हमरे उर ऊपर, धरहु त्रिताप हरैया॥६॥
मंजुल मधुर बैन मुक्ताफल, बुध जन के मन हारी॥

---

१ एक तुम्हीं प्रकट हुए हो। २ माँगे ३ नवल, नवीन। ४ परिचय से। ५ कल्पद्रुम के समान शीलवन्त।

हे कमल नैन तव बानी सुनि, हम मोही-१बुद्धि बिसारी ॥
अब तिनकों अधरामृत झाकनि, नीकी भाँति छकैये ।
हैं तुम वियोग की ज्वालन मंडित, तिन्हें नहीं दहकैये ॥
शुद्ध अमृत निधि कथा तुम्हारी, ताप बुझावन हारी ।
कविजन करत बड़ाई जाकी, उजियारी अवहारी ॥
प्रेम अमल मय गान तुम्हारो, श्रवननि मंगलकारी ।
नर गावत जे जाकों ते पावत, उत्तम पद छितचारी ॥
पिय हँसनि रावरी लसन चितोकनि परम प्रेम सरसावन ।
विमल अङ्क भरिनीची परसन, वचनन बिरह सिरावन ॥
पुनि औरो विविध विहार विहारन कपटीछल बरसावन ।
ते हमकों भई निपट दुखदाइनि, मन्मथ ज्वाल जगावनि ॥
जब ब्रज तैं जात चरावन गैयाँ तुम श्री कुंज बिहारी ।
मृद समद मतंग चाल की मल्हकनि पद पंकज अनुहारी ॥
तिन मद्धि तीख अंकुर लगि तुमकौ ह्वै है करत दुखारी ।
पियतिहि निमित्त लघुहृदय हमारे होत बिथा अतिभारी ॥
दिवस अन्त आवनि छबि छावनि बन तैं गैयन पाछैं ।
नव अरविंद खिल्यौ सो आनन ढिंग जुल्फैं जुग आछैं ॥
कछु श्रम जलबिन्दु भाल सुन्दर पै गोखुर-रज सरसानै ।
तिहि लखैं पंचसर हमकौं नित प्रति करत निपट कलकानै२॥

---

१ मोह गई बुद्धि । २ दुखी, व्याकुल

जानै न बात तिन दै[1] मनवांछित श्री जिनसौं हित ढायौ।
हरै तमोगुन आधि अखंडित छित मंडल छवि छायौ॥
पग अरविन्द विपत्ति बिखंडन वेदन में जो गायौ।
सो तुम धरौ हमारे उरपै सीतलता सरसायौ॥१५॥
पिय ऊँचे सुर सौं वेनु बजाओ अधर सुधा सौं सानी।
जिहि सुनै न और राग सुधि आवै दुख न होय दुखदानी॥
तुम सब दिन फिरत विपिन के अन्तर, हम इकटक मग चितवैं।
तुम मुख अरविन्द बिना अवलोके छिनहूं जुग सौ बितवैं॥१६
तुव आनन चन्द अलक मंडल में, प्यारे जब लखिपैये।
तव पलकनि ओट होत हा मन में, मुग्ध बिरंचि बतैये॥
पति पिता पुत्र कुल भ्रात बन्धु की, मरजादा कौं तज्जैं।
हम आशा कर आईं तुव पासैं परम प्रेम कौं सज्जैं॥१७
रति रंग ढंग परवीन सांवरे, तुम मुख गान सुहायौ।
हम ताहि सुनै मोहित ह्वै, इतकौं परवस चित्त चलायौ॥
तुम कपट-जुती बातैं प्रगटावत, अब निज हियें बिचारौ।
नर कोउ तजत रैनि में नारी, प्रेम पंथ गति वारौ॥१८

स०—मिलिकैं बतरात सिरात हियौ,
अँग अंग अनङ्ग महा सरसै।
मुसिक्यात से आनन प्रेम सने,
अवलोकनि सौं सुख सौं बरसै॥

१ जो बात करना नहीं जानते तिनको मनवांछित फल देने वाले।

अरु श्री कौ निवास विलास भरयौ,
उर रावरी सुन्दरता परसै।
लखि ताहि समुद बढ़ै,
मन मोह कौ वार न पार कछू दरसै ॥१६॥

दोहा

हम ब्रजबासिन प्रगट सब, दरसन चाहत चित्त
तातै जग मंगल करन, सो सब दीजे मित्त ॥२०॥
दूर करन हिय रोग कौ, निहचै यही उपाय।
मुख दिखाइ नीकौ अपुन, डारौ दरद मिटाय ॥२१॥
सुन्दर कोमल कमल से, चरन तुम्हारे श्याम।
ते धरि निज कुच कठिन पर, हम सब डरपी बाम ॥२२॥

सोरठा

सब दिन तिनसौं लाल, तुम बन जाहुति फिरत हौ।
कितौ न बिथा विसाल, तरनि हमारे होति है ॥२३॥
मन वच कामनि एक, हमकौं कम बन साँवरे।
तातैं सखि निज टेक, दरस देउ अनुराय कै ॥२४॥

तृतीय अध्याय समाप्त

अथ चतुर्थ अध्याय

बहुरि परीच्छत नृपति सौं, श्री शुकदेव सुजान।
प्रेम पगे बोले बचन, गुनिकैं भक्त निधान ॥१॥

पादाकुल

यों त्रिविद्धब्रज सुन्दरि आईं, बहु बिलाप युत विरह सताईं।
कितहू नहीं डीठि में आयौ, जब मन मोहन मित्र सुहायौ॥
तबते अति पुकारिकैं रोईं, दरसन के अभिलाष समोईं१।
तिनही मद्धि सूरकुल दिनकर, प्रगट भये तक्षण तमदुःखहरि॥
अंग प्रत्यङ्गन बने दरंगनि, लसै पीत पट चपला ढंगन।
फूलन की उरमाल सुहाई, मनमथ के मनमथ यदुराई॥
लखिसमीप वहु प्रीतम आयौ, अबलन के नैनन सुख छायौ।
एकै संग उठीं सब ऐसैं, देह प्राण के आये जैसें॥
काहू हरि के कोमल हत्थहि, गहि लीनौं ह्वै हित तथपत्थहि।
अपने जुगल करन मैं लैकैं, मोह रहीं सुख में चुप ह्वैकैं॥
अरु काहू ने भुज छवि छाइ, चंदन सौं चर्चित सुखदाई।
अपने कन्धा ऊपर धरिकैं, मगन भईं सुख में हित भरिकैं॥
अरु काहू भरि प्रेम विशालैं, निजकर अंगुलियौ उगालैं।
अरुइक हरि के पग अरविंदन, रही उरजि धरि भांति अनिंदनि
अरु इक भृकुटी कुटिल ढिढ़ायें, मनुमन्मथ कौ चाप चढ़ाएँ॥
बान समान कटाक्षनि चितई, हरि की ओर प्रेमगति जितई।
ह्वै विह्वलहितरिस अधिकानी, प्रीतम की ग्रीवा लपटानी॥
निज दन्तनि में अधरहिं लीनें। रहीं मौन ह्वै आनन्द भीने।
शानेउ नीर तृषित१ ज्यांपायें, पियतु एक रस२ रुचि उपजायें॥

---

१ सनी हुई। १ पियासा २ एक साँस में पीना है।

त्यौं छवि सुधा पान कौं करिर, नहीं अघात विरह कौं दरि दरि ॥
जिहि विधि संतन के गुन रूरे, तिनके पग पंकज जस पूरे।
तृप्ति न लहैं ध्यान में लै लै, मन तैं धोइ विषय बदफैलें ॥
अरु इक दृग मग ह्वै हिय धरिकैं, रही मूंदि पलकनि दुख दरिकै
अरुइक भेंटि सुपुलकित अङ्गनि, जोगे सुर जिमि वही सुढंगनि ॥

दो० पिय कौ दरसन पायकैं, उर में मंगल मानि ॥
ते सब बिरह हुतास१ तें, निकरी यों सुख सानि ॥१४॥
जैसे बिरहिन भामिनी, बहु दिन में पति पाय।
मिलति बिलोकति चित्त में, रंचक हू न अघाय ॥१५॥
तिन सब के दुख दूरि करि, मदन मनोहर श्याम।
संग लियें जमुना पुलिन, आये पूरन काम ॥१६॥

छं० खिले कुंद मंदार वृच्छ बल्ली जँह दरसत।
सरद चंद की किरनि, लागि रजंनी में सरसत ॥
त्रिविधि पवन फहराति, मिलै श्रम जाके परसत।
इंदीवर अलि रत्त मत्त पुंजनि छवि बरसत ॥
'शशिनाथ' तरंगनि करनि सो, कालिन्दी चित चाइकैं।
सित चन्दुक चूर समान दिय, तटबालुका बिछाइकैं ॥१७॥
ता पिय कौ मुख लखत रोम उर सौं इमि भज्जिय।
ज्यों तम चन्द उदोत होत सटकैं निर्लज्जिय ॥
जिहि विधि श्रुति अन्य मनोरथ लहि अति खज्जिय।

१ अग्नि।

प्रगट ब्रह्म गुन गाय अनेक निसंसय तज्जिय ॥
रंगीन कुचनि कुंकुमनि तैं, बसन बिछाए तियन सब।
मंडित उमंग अंग अंग में, मिलि राजे प्रभु तहाँ तब ॥

पद्धरी छन्द

ज्यों जोगी सुर उर अमल मद्धि। दिन रैन विहारत साँचसद्धि।
सोसहसान सुंदरी मद्धि आप इहि विद्धि लसैं कान्हर प्रताप१।
ज्यों तारनक्षत्रनि माँझ चंद। संपूरन दरसै दुति अमन्द।
तिहुँ लोकनिकी सोभा सहित्त। विधिहूँ नहिं जानै जिहि चरित्त

भली भाँति सन्मान करि, हँसि बिलोकि मुसकाय।
हरि के सुन्दर कर चरन, अङ्क धरे सचुपाय ॥२१॥
चम्पति धीरज सज्जिकैं, रंचक रिस उर लाय।
बोलीं नन्द कुमार सौं, व्रज सुन्दरी सुभाय ॥२२॥

पद्धरी छन्द

इक चाहति आपुहिं चहैं ताहि। नहि चाहैं जु तिहिं चाहैंसराहि
अरु दुहुनितजेतैं कौन आहि। कहिये सुमनोहर प्रभु उछाहि
ब्रज सुन्दरीन कौ वचन एह। सुनि स्याम उच्चरे उर अतेह२
जो होत परस्पर चाहवन्त। ते स्वारथमंडित सुनहु तन्त३
नहिं धर्म और नहिं नेह रंच। यह बात जानिये अप्रपंच
नहिं चाहित तिनसौं करत प्रीति। ते मात पिता सम होत रीति
तहँ धर्म होत निन्दा विहीन। अरु होत नाहिने प्रेम छीन

१ बिना गरमी के, बिना किसी प्रभाव के २ क्रोध रहित ३ पते की बात

अरु दुहुँनि चहन जो नाहिं आप। निर्लेप ब्रह्म सो उर घनाप१
अघ्रतंज्ञ कि गुरु द्रोही अपार। से जानि लीजिये वार वार
सखी मोकों जो प्राचीन हैंन। हैं ताहू कौं चाहत सचैन
तुम प्रीति वढ़ावन के निमित्त। आपुन में निहचैं विमल चित्त
ज्यों कोऊ धन पावै अनन्त। नसि गए वहुरि धन सो तुरन्त
तिहि धन की चिंता मद्धि न्हाय। नित मगन रहै तन मन भुलाय
इहि विद्धि सुमोहित है निदान। तुम लोक वेद की तजिय आन
जो अधिक चित्त में चोंप होय। मेरे विलाप की विरह मोय
हौं याते हुव तुव दृगनि ओट तुम रहीं एक रस लोट पोट

दोहा—तातैं तुम रिस मत करौ, मोपै सब व्रजबाल।
हौं तौ निहचैं प्रेम के, हैं आधीन उतालर॥
तुम अदोष न्हाइ महा, संगम सुधा समुद्र।
तुव कीरति नित जाइहैं, लोक अशोक अछुद्र॥
हैं अमरनि के आयु के, वृन्दनि हू हित छाइ।
तुमसौं अरिनी३ हौंउँ नहि, सेवा करि बहु भाइ॥

सो०—सो तुम मोहित काज, दृढ़ साँकरि तजि गेह।
तृन सम गिनी न लाज, आईं आतुर मो निकट॥

दोहा—तुम अपनं करतूति सौं, तातैं सब व्रज भाम।
सोभा पावौ जगत में, ह्वैकैं पूरन काम॥

---

१ अथाह २ उतावला ३ ऋण मुक्त, ऋण से उद्घार।

अथ पञ्चम अध्याय

दो०—बहुरि परीक्षित नृपति सौं, बोले सुक मुनि राय ।
सुनौं और हू कहतु हौं, जो प्रभु कियौ सुभाय ॥

ब० चौ०

इमि सुनिकै बचन नंद नंदन के, ब्रज सुन्दरी सुहाईं ।
सब छूटि गईं भव के फन्दनि तें विरह झकोर झुराईं ॥
निजु जानि ईश ने अपने जाइकै, प्रेमपूर सरसानी ।
तिनहिं बाहु बल्लीन कंठ धरि रच्यौ रास सुखदानी ॥
तहँ भयौ रास मंडल अनखंडित मंगल रूप सुहायौ ।
तिन द्वै द्वै मध्य एक नँद नंदन आनन्दनि सरसायौ ॥
ते अपने अपने संग सुन्दरी जानति सब गलबाहीं ।
दशहु दिशा अरु चार भवन की सोभा बसी आनि तिहिं ठाहीं ॥
तहँ कौतुक लखत बिमान सुरन के अनगन अंबर छाए ।
निज संग सुन्दरी लिये हिये में अभिलाखन अधिकाए ॥
बहु भाँति दुन्दुभी बज्जन लागी अम्बर में मधुरानी ।
अरु मकरंदन-मंडित-फूलन-बसा बहु बरसानी ॥
गुन गरु वे गंधर्बन के नायक संग सुन्दरी लीने ।
गुन गावन लगे नँद नँदन कौ परम प्रेमसौं भीने ॥
अरु पिय तियके पाइन की गति की चंचलता छिति लागैं ।
बहु बलया बलयकिंकिनी नूपुरधुनि सज्जी सुख दागैं ॥

ताल मृदंग तीन सर-मंदर सारंगी मुँह चंगै।
मिलि कंठ सुरन सौं एक रूप ह्वै प्रगट्यौ सद्द सुढंगै॥
तिन कामिनीन के मंडल में यौं कंत साँवरौ दरस्यौ।
ज्यौं कंचन मनिमाला में मरकतमनि गन सोभा सरस्यौ॥

त्रि० चंचलता पावनि भुजा हलावनि,
　　प्रगटैं भावैं नलचानी।
भृकुटी मटकावनि, नाक चढ़ावनि,
　　कटि लचकावनि तिरछानी॥
खुलि बेनी वलकैं, बढ़ अञ्चल कैं,
　　लट छबि छलकैं, विथुरानी॥
तब भूषन भारनि होति, अपारन,
　　झनक सुढारन, गतिसानी॥
गति साँती हुलसैं अरु मृदु बिहँसैं,
　　कुंडल विलसैं, चपकाए।
अंचल चहुँ ओरनि, कचन कोरनि,
　　तड़ित करोरनि, निदराए॥
चोली बंदन, फुँफदी फँदनि,
　　जाति छर छंदनि, शिथलाई।
मंडित श्रम बूँदैं, मुख शशि रूँदै,
　　हग अधमूँदै छबि छाई॥
छवि छाई पीके, रसिक वली के,

सब उनहीं के गुन गावैं ।
तिरछौंहे देखैं, विसरि निमेखैं,
हित अनलेखैं, उमड़ावैं ॥
गीवनि लहकाएं उरनि उचाएं,
जानु लचाएं लहराएं ।
धन तड़ित समानी, द्युति दरसानी,
सुख बरसानी थहराएं ॥
इक जिति अभिमानैं, उचरी तानै,
सुर मधुराने, अलबेली ।
हरि प्रेम अदोले, वचन अमोले,
तासौं बोले धनि हेली१ ॥
मिजु लीन्ही फिरकैं, तान तुनरिकैं,
असनी नरकैं, रस भेली ।
सो सुनि ब्रजनारी, बचन उचारी,
तुम निरवारी२ तलवेली३ ॥
इक निकट ही ब्रजबाल । सो अमित भइय विहाल ॥
ति बहु धरि विज्जु अंस । हरिगगन के अवतंस ॥
लिय ताहि तुरत उठाय । नृत्य निमित्त सुभाय ॥
हिय हुती मल्लिय माल । शिथलाइ गइय विसाल ॥
खुल्लि गइय कंकन कोल । सो दिय सुधारि सुसील ॥

१ सहेली २ दूर की ३ व्याकुलता ।

हुव सावधान सुभाम। लखि प्रेम पन अभिराम ॥
गल बाँह ही तिय और। ताने सुलहि हित ठौर ॥
अरविन्द के मकरन्द। राख्यौ मिलाय अमन्द ॥
हरि अंग मुख चन्दन लाइ। लिय सूँघि मंडित चाइ ॥
अरु कियौ चुम्बन फेरि। तन भुजुनि कौं हरि हेरि ॥
इक हुती नचति नारि। कुण्डलनि छबिहि बिथारि ॥
ताके कपोलन बीच। छइ रही तिहि सु मरीचि१ ॥
तिय सो कपोल अमोल। हरि के कपोलहिं गोल ॥
रहि गइय अग्यु लागइ। बिरहानलौ सियराइ ॥
दिय ताहि पिय ने पीक। हित छाइकैं बिधि नीक ॥
इक करति ही तिय गान। इक नच्चि निकट निदान ॥
कटि किंकिनी झनकार। अरु घुँघुरून घनकारि ॥
अति होति ही इकसार। सोभा सुतासु अपार ॥
सुखसनी पाइ इकन्त। नित जाहि ध्यावत संत ॥
व्रज सुन्दरी स उछाँह। ताकौं लिये गल बाँह ॥
निशि मध्य मंडिय रास। पुरई सबै मन आस ॥
ताके बिबिध गुन गाइ। दीन्हैं बिषाद बिहाय ॥
सबने सु अपने संग। जान्यौ समेत उमंग ॥
श्रुत में बने जल जात। जुत कुंडलनि सरसात ॥
परसैं कपोलन गोल। अलकैं अति कुटिल लोल ॥

---

१ आभा, किरण।

मुख चंद पै छबि वान। श्रम खेद बिन्दु अनसान ॥
दन भूषनन के रुद। बहु भाँति होत अहद ॥
कबरीन तैं खुलि केस। बिथुरे विशाल सुकेश ॥
तिन सैं सुजरि झरि फून। मण्डल लस्यौ मुख कूल ॥
भूषन अनेकन बाल। भू परैं टूटि बिहाल ॥
नँदलाल संग सुबाल। नच्चैं अनेक रसाल ॥
अंग अंग वसन सुरंग। फहरात निपट सुढंग ॥
लहरैं सुगंध झकोर। अलि गुञ्जरैं चहुँ ओर ॥
मनुहरषि रचितहि गान। परिपूरि रास विधान ॥

मुक्तादाम छन्द

कियौ परिरम्भन यों अंक अङ्क, मनोहर ने करचांप सुढंग।
सनेह भरी अवलोकनि साजि, हुलास भरे मुख हासनिराज ॥
रमेन्द्रहि विद्धिरमापति श्याम, लिये व्रज सुन्दरि संगललाम।
कला सब जानत बुद्धिनिधान, कह्यौ न परै पिय जेहि समान ॥
अनेकन दपन में जिहि विद्धि, लसत घनै प्रतिबिंब प्रसिद्ध।
तिही विधि सौं व्रजग्वालिन साथ, इकै सुअनेक भयौव्रजनाथ ॥

दोहा

व्रजसुन्दरि पिय अंग कौ, संगम पाय सुभाइ।
सबै छकी आनन्द नें, सुधि अरु बुद्धि भुलाइ
खसिगी उरजन कंचुकी, खुलिगे अंचल चीर
बिथरे कुन्तल सिरनतैं, छिटी प्रघन भीर

सोरठा

जो छविही अंग अंग, ब्रज वनितन के बृन्द में।
तातें निपट सुढंग, फूलनि की मालानि हुव॥
निरखि सुरन की भाम, नन्दलाल के रास कौं।
गोपिन ससहिं सकाम, आई नारी रूप धरि॥
तितहूँ सौं नंद नंद, रमन कियौ चितचाइ कैं।
पूरि सुहियें अनन्द, बची मदन के त्रास सैं॥
जऊ आत्माराम, हुते मनोहर श्यामघन।
प्रगटि कला अभिराम, तऊ रमन तिनि संग कियौ॥
करि करि विविध विहार, तिनकौं श्रमित निहारिकैं।
निजकर कमलनुसार, तिन सौं पौंछे चंद मुख॥
सहित नछत्रिन कंद, अचल भयौ कौतुक निरखि।
भये अनिद्र परिन्द, औरन की गिनती कहा॥

पावदाकुल छंद

ब्रज तिय पूरित प्रेम अखंडित। कुंडल श्रवंन करकमनि मंडित
राजत खुले कुंतलनि नीके। गोल कपोल भावते पीके
अमृत सनी मुसिक्यानि सुभाइन। भृकुटी कुटिल कमान प्रभाइन
करति गान भरि तान विचित्रै। पिय चरित्र मंडित सु पवित्रै
नंदनंदन पिय के कर परसैं। पुलकित तन आनन्दनि सरसैं
कुच कुटुम्ब के रंगति रंगी। माल मरगजी लसी सढंगी

कवित्त

फहरैं दुकूल गोरे अंगन सुरंग और,

मनिमय भूषन सुभग सरसाइ कैं।

सोमनाथ कहै तिय तिरछी चितौनि चितै,

लङ्क लहकाइ चङ्क भृकुटी नचाइ कै॥

लै जाति विचित्रै चारु तिनके चरित्रै,

जाय तरुनी निसंक भरै जाति ललचाइ कै।

छोड़ि छल छंदै प्रेम उर में अनंदै भरि,

मोहित गुविन्दै नन्द नन्द मुसिक्याइ कै॥

दोहा

तिनके संग सुहावनी, इहि विधि रचिकैं रास।
श्रम टारन जल केलिकौं, गये समेत हुलास॥
करत गान गंधर्व गन, पाछैं आवत संग।
जिनि में मीठी होति ही, बहु विधि तान तरंग॥

सोरठा

पुलकौं तोरि सुढंग, श्रम निवारिबे के लियैं।
जैसे मत्त मतंग, साथ लियैं सिंधुरिन कौं॥

संजुता छंद

ब्रज की तरुनि गन संग में, नंदनंद पूरि उमंग में।
जमुना गये श्रम टारने, जल मद्धि विविध बिहारने॥
तिहिं कूल हरषित जाइकैं, जल में धँसे अतुराइ कैं।

नहिं अवनीश्वर मनुज करै इहि काम कौं।
जऊ लहै जगमद्धि अमित धनधाम कौं ॥
जो सठता सौं करै नास कौं तौल है।
ज्यौं समुद्र कौ जहर रुद्र समता गहै ॥
एक वचन ही सत्य प्रभुन कौ मानिये।
उनकी करनी कछु न नहचै ठानिये ॥
कहैं जु वे कछु बैन सु उर में धारिये।
बुद्धिवन्त हैं वही न और विचारिये ॥
उत्तम कर्मन करत न कछु सुख साजई।
अहंकार तें रहित कुकर्म न लाजई ॥
भलौ बुरौ जो करै अहंता तज्जिकैं।
धर्म अधर्म न लगैं तिनैं सुरगव्जिकैं ॥

दोहा

जो नाइक जगकौ रह्यौ, सब जीवन में पूरि।
ताइ सुभासुभ कौन विधि, व्यापै जसकौ दूरि ॥
जाके पद पङ्कजन की, रज कौं ध्याइ मुनिन्द।
अघ फंदनि तें छूटिकैं, बिहरति भाँति अनन्द ॥
है ताकौं बंधन कहा, जो काटै जग फंद।
नर किन्नर मुनि अमर हू, जाहि जपैं सानन्द ॥
निज इच्छा सौं जिन लह्यौ, नरदेही अवतार।
[illegible] करन कौं, यह जानौं निरधार ॥

सोरठा

गोपिन के तन मद्धि, औ गोपिन के पतिन में।
निज प्रभाउकौं सद्धि, व्यापि रह्यौ मनिसूत जिमि ॥
लीला जैसिय विद्धि१, प्रकट जगत में श्याम घन।
ताही विधि परसिद्ध, गाय तरैं भवसिन्धु कौं ॥

पादाकुल

गोपिन सौं गोपिन के कन्तनि। कीन्हौं नहीं ऐसतिहि तंतनि ॥
कृष्ण हेत नहि मन दुख पायौ। असि तिहिं माया हाथ बिकायौ ॥
सबनि आपुने ढिगहीं जानी। नहि बिछुरन की चरचा आनी ॥
निज निज घर में विहरन लागी। नन्दलाल के हित में पागी ॥
प्लवंग—ब्रज बनितन के संग करी जो श्याम ने।
यह लीला सुखधाम परम अभिराम ने ॥
पढ़ै सुनावै सुनै याहि जो नेम सौं।
लहै सुहरि की भक्ति पूरि कै प्रेम सौं ॥

दो०—संवत ठारह सै बरस, उत्तम अगहन मास।
शुक्ल द्वितीया बुद्ध दिन, भयौ ग्रन्थ परगास ॥
माथुर कवि 'शशिनाथ' की, सुकविन कौं परनाम।
भूले होय सो सोधियौ, यही गुनिन कौ काम ॥

स्फुट कविता

मङ्गलाचरण

सिंधुर बदन अमंद चंद सिंधुर भालधर।
एक दंत दुतिवंत बुद्धि निधि श्रेष्ठ सिद्धिवर॥
मदजल श्रावत कपोल गुंजरत चंचरीक गन।
चञ्चल श्रवण अनूप थौंद थरकति मोहति मन॥
सुरवर मुनि वरणत जोरि कर, गुण अनंत इमि ध्याय चित
शशिनाथ नंद आनन्दकर, जय जय श्री गननाथ नित॥१

अमल अनंत नव नीरद वरणवंत,
प्रगटे अवनि पै अनादि निरधारे हौ।
असुर बिदारे दुखं पुंज निरवारे कोटि,
सकल सुधारे काज गूढ़ गुण भारे हौ॥
जहाँ जिहि ध्याये तुम तँही ठहराये आय,
रूप उजियारे सोमनाथ उरधारे हौ।
जै श्री रघुनायक हौ चारयौ फल दायक,
दुलारे दशरथ के हमारे प्रान प्यारे हौ॥२

उदय दिवाकर रंग अंग आभा वर धारनि।
त्रिनयन चंद लिलार ईश अरधंग विहारनि॥

सिंहवाहिनी सिद्धि चारि भुज आयुध मंडनि।
जोगिन मंडल संग चंड दानव दल खंडनि ॥
बहु बुद्धि वृद्धि वरदायिनी, मोहन सुर नर मुनि मननि
हूजै सहाय शशिनाथ कौं जै श्री सिंधुर मुख जननि ॥३॥

राजकुल वर्णन

आठौ जाम हीये नीति रीति सौं प्रतीति जाकैं,
चरचा न रंचक अनीति के विधान की।
पारावार सील कौ उदार कहि सोमनाथ,
दुहूकर सीख्यौ विधि पारथ के बान की ॥
सिंहबली बदन महीप जो सिकार चलै,
सेकैं लंक वारे सुनि गरजि निसान की।
तेग मतवारे दिगदंती रखवारे बीर,
जाकी आन मानत प्रमाने किरवान की ॥४॥
प्रबल प्रताप दावानल सौ बिराजै जोर,
अरनि के पौरि रौरि धर्मकि निसाने की।
ठट्ठ मरहट्टा के निघट्टि डारे बाननि सौं,
पेस कसि लेत हैं प्रचंड तिलगाने की ॥
सोमनाथ कहै सिंह सूरज कुमार जाकौ,
क्रोध त्रिपुरारि कौ सौ, लाज बर बाने की।
चढ़ि कैं तुरंग जंग रंग करि सेलन सौं,
तोरि डारी तीखी तरवारि तुरकाने की ॥५॥

सबिधि समर्थ रच्यौ बिधि ने प्रतापसिंह,
जाके आगैं रती सौ सरूप रति पतीकौ।
सोमनाथ सील जस मन्दिर बिलंद अति,
मूल रघुनन्दन की भगति रसवती कौ॥
बान करि पारथ करन किरवान करि,
दान करि लीन्हौं जीति कंत दमयंती कौ।
बाग गुण गनी कौ सुदाग रिपुरती कौ है,
भाग क्षत्रपती कौ सुहाग बसुमती कौ॥६॥

उद्धत प्रताप मारतंड सौ प्रचंड तपै,
अरिन के उरलागै पावक झकोर लौं।
सोमनाथ कहै जग दारिद बिदारि डारयौ,
दानि की सकति निप्त बित्त की करोर लौं॥
सिंहबली वंदन महीप के प्रतापसिंह,
तेरे भुजदण्ड जोर पत्थ भुजजोर लौं।
बरनी कवीन दुख हरनी अनंत इमि,
करनी तिहारी धरनी के ओर छोर लौं॥७॥

जुद्ध कमनैती सौं धनञ्जय पछेल्यौ जिहि,
उद्धत गंभीरता पै सागर घिसारियै।
तेवकर भान के प्रमान कहि सोमनाथ,
दान सनमान के अनूठे निरधारियै॥

बली परतापसिंह हिम्मति उदार जापै,
दया रघुबीर की अपार उर धारियै।
विक्रमनि वधारियै, न करन विचारियै जू,
देवतरु टारियै घनेरे इन्द्र वारियै ॥८॥
संकर के अंग सो है गंग की तरंग सी,
विरंचि के विहंगम सी चंद तैं उदार सी।
सारदा पवित्र सी अनंत मित्र मित्र सी,
सुरेस आत पत्र सी नछत्र की कतार सी॥
बाहु बली बखत बिलंद परतापसिंह,
कित्ति तव राजै इमि धरा के सिंघार सी।
रूपे के पहार सी, अमंद छीर धार सी,
पीयूष पारावार सी सतोगुन के सार सी ॥९॥

कवि-प्रशंसा

वचन महूष ऊख परमपियूष हू तैं,
बोलत मधुर ही के नेम ही के बस के।
आदर अनंत मुकतावलि के चाह वारे,
जिनकौं न ओछे काज हेरिबे के चसके॥
नीरछीर न्यारे दरसावन समर्थ सदा,
सोमनाथ कहैं कहूँ काहू कैं न कसके।
मान सरवर राजवंस कवि राजहंस,
हैं जस इलाज औ समाज मजलिस के ॥१०॥

दामिनि द्यौ सम हैं दसहू दिसि, दादुर दुंद मचावन लागे।
घोर घनै गरजैं घन ये, ससिनाथ हियैं विरचावन लागे॥
सीत समीर सुगंध चढ़ै भर अति आँच तचावन लागे।
सावन में बिन भावन री मुरवा अब नाच नचावन लागे॥११

निरखैं बन बागन डीठि त्रसैं दुखमूल दुकूलनि के घिरनै।
न सुहाय सरीरहिं सीत समीर उसीर सुनीरहु के झिरनै॥
ससिनाथ कहा कहियै अब तौ नित कै उर अंतर के निरनैं।
परसैं बिरही मन चूर करैं अति क्रूर निसाकर की किरनैं॥१२

फूले निरखि रसाल बन, दीनौं बिरह बहाय।
पियराने तिय वदन पर, लसी अरुणाई आय॥१३॥

पजरत हियौ समीर तैं, ह्वै न सकै घनसार।
सखी दूरि धरि दृगन तैं, नव अरविंद कतार॥१४॥

देह लता नैन अरविंद भौंह भौंर पाँति,
अधर ललाई नव पल्लवनि तुंदरी।
हाँसी बेल वैन धुनि, कोकिल कपोल चारु,
चिबुक गुलाब नाक चंपक असुंदरी॥
सोमनाथ कहै पीत बसन पराग पुंज,
सोभा कहिवे कौं सारदा की मति कुंदरी॥
परसी मुकुंद स्वेद बुंद मकरंद वारी,
केलि कुंज अंतर वसंत रितु सुंदरी॥१५॥

पद्मिनी

सुबरन रंग सुकुमार सबै भावनि कै,
अंगन उछाह की लहरि लहरी रहति।
भूसन बसन चारु दसनि हसनि और,
नैनन में प्रेम रस प्यास गहरी रहति॥
सोमनाथ प्यारे अलि भौंवरी भरत रहैं,
चहूँघा चकोरनि की चौकी ठहरी रहति।
सरद कौ चंद कैसैं कहौं मुख चंद सम,
छहूँ रितु जाकी छवि छटा छहरी रहति॥१६॥

चित्रणी

बीसन बेर सिंगार सजै, लखि आपन यों रति कौं रती जानति।
मंदिर साँझ नचावै सखीन लै बीन प्रवीनता सौं उरतानति॥
नाथ सुजान के संग विहार कौं सीख न औरन की उर आनति।
प्रेम चरित्र पगी तरुनी नित मित्र के चित्र ही मौं सुख मानति॥१७

हस्तिनी

दीरघ रदन दुरगंध के सदन अंग,
अंबर मलीन अरु समद गज गामिनी।
भूरी अलकावली अनूठी अरु चपल चित्त,
भोजन की बतियाँ सुहाति दिन जामिनी॥
बैन सुनै कौन के परत चन कानन में,
बड़े २ ओठ ओछी आँखैं अभिरामिनी।

औरन की चरचा कहाँ लौं कहि सोमनाथ,
भीम हूकौं लागति भयानक सी नामिनी ॥१८॥

वयः संधि

बीती लरिकाई न झलक तरुनाई आई,
निरखै सुहाई अंग औरैं ओप अति है।
तुला चल संक्रमन की सी दिन राति कोऊ,
घटि बढ़ि है न साधैं ठीक ठहरति है।
दरस कौ अन्त्य ज्यौं उजेरौ ना अँधेरौ पाख,
सोमनाथ उपमा प्रमाण परसति है।
दोऊ वैस संधि में छबीली प्राण प्यारी वह,
अरुण उदय की कंज कली सी लसति है ॥१९॥

ज्ञात

छटि कैं कटि रंचक छीन भई गति नैनन की तिरछान लगी।
शशिनाथ कहैं उर ऊपर तैं अचरा उघरे तैं लजान लगी ॥
लरिकाइ के खेल पछेल कछूक सयानी सखीन पत्यान लगी।
पिय नाँउ सुनैं दिन द्यौसक तैं दुरिकैं मुरिकैं मुसक्यान लगी ॥२०

ऊढ़ा

सुख पावत ज्यौं तुम त्यौं हमहूँ कबहूँकतौ भूलि पतैबौ करौ।
दुरि दूरि रहौ अनवैं छिन से निसि द्यौस बितैबौ करौ ॥
चित दैकैं सुजान सुनौ ससिनाथ सनेह की रीति जतैबौ करौ।
अँखियान की ताप रितैबौ करौ, सुरती मुसिक्यान चितैबौ करौ॥२१

सीतल पवन पुरवाई के परस नव,
बेलिन विद्रुमन सौं लगनि अछेह की।
तैसी चारु चंचला चमकि चहूँ ओरनि तैं,
मोरन कौ सोर सुनै उमह अदेह की॥
सोमनाथ सुकवि निहारि हरषन दुरि,
कान्हर सुजान सौं मिलत कुंज गेह की।
बिसरै अजौंन छिनु देह थहरन आली,
नेह सरसन और बरसन मेह की॥२२॥

गुप्ता

आई सब अंगन दुकूल सजिवे की बानि,
मतिहू न भूषन बनाए अलसाति है।
तुमही बताओ परोसिन हौ प्यारी न तौ,
औरन सौं बूझिबे कौं बानी ललचाति है।
बेर २ सुघर सहेलिन पै सीखी तऊ,
कहा करौं तीखी कँगही सौं न बसाति है।
कबहुँक भूले निजकर सौं उरोजन पै,
बारन के ऐंचत खरौंट लगि जाति है॥२३॥

अनुसयना

पाग अलबेली झगा झीने में लसत अंग,
पीत पट बाँधै कटि निपट हँसौहें रुख।

जगमगे मणिमय कुंडल श्रवन और,
मन्द गति आवत बढ़ावत अनंत सुख ॥
सोमनाथ सुंदर सघन बनमाल कंठ,
मुरली सुनाइ चारु चित के हरन दुख।
लखि यौं गुपाल मीत परम रसाल बाल,
मनमथ जाल उरझानी मुरझानौ मुख ॥२४॥

खेलति ही सखियान के संग में प्रेम रसै अवरेखन लागी।
आपनी छाँह हू सौं डरपै यौं कलंक अतंकहि लेखन लागी॥
आये तहीं ससिनाथ सुजान मनोभव मूरति पेखन लागी।
तौहू रह्यौ न परयौ छलसौं दृग कोरनि ह्वै दुरि देखन लागी ॥२५

रूपगर्विता

मंदिर की दुति यौं दरसी जनु रूप के पत्र अलेखन लागे।
हौं गई चाँदनी हेरनि कौं तहँ क्यौं हू वरीक निमेखन लागे॥
डीठि परयौ नयौ कौतुक ह्वाँ शशिनाथ जू यातैं बड़े खन लागे।
पीठि दै चंद की ओर चकोर सबै मिलि मो मुख देखन लागे॥२६

खंडिता

स्याम घनवरण वसन तन मिलि रह्यो,
रस वरसन हार चहूँ दिसि छाए हौ।
सोमनाथ कहै सुरचाप सौं बिराजै मंजु,
मुकुट कच नागर जानि लपिटाए हौ॥

कुंडल झलक चमकनि चञ्चला की चारु,
चंद बधू जावक लिलार कहि पाए हौ !
को न हरषत रूप रावरौ लखत आजु,
सब अंग पावस गुविन्द वनि आये हौ ॥२७॥

पलकनि पीक लीक अंजन अधर नीक,
नैनन के रङ्ग पै मजीठ निदरति हौं।
तिन ही सौं अंक भरि विहरौ निसंक जिनि,
अंकित करीं यौं भुज हेरति डरति हौं ॥
सोमनाथ सुनिये सुजान बहु रीझी हौं,
निहोरि कर जोरि कोरि विनती करति हौं,
तुम मेरे उर में सुखद सरसत बहु,
रावरे हिये में या तैं बोझनि मरति हौं ॥२८॥

कलहांतरिता

कौन धौं कुमति उर आनि वैठी जानी नाहिं,
ऐंठी प्रान प्यारे सौं बिसाहे उतपात हैं।
ताकौ फल पायौ मन भायौ भयौ सौतिन कौ,
सोमनाथ विरह भुलाए सुख सात हैं ॥
तब तौ न काहू सतराय समुझायौ उन,
दौरि दौरि लाईं जलजातन के पात हैं।
मैं न मान्यौं प्यारे ब्रजचंद के मनाए अब,
चंद की मयूखन फफोका परे गात हैं ॥२९॥

पुरुष अभिसार

चारु निहारि तरैयन की दुति, लागो सहा त्रिरहा तन तावन।
ए ससिनाथ कहा कहिये तन सूल गनै नहीं कंज से पाँयन॥
पीत दुकूल में फूलन लै अलबेली के प्रेम की सिद्धि बढ़ावन।
कान्ह दिवारी की रैनि चलै बरसाने मनोज कौ मंत्र जगावन॥३१

प्रोषित पतिका मुग्धा

जा दिन तैं परदेस गये हरि ता दिन तैं परसै न अबीरहिं।
नाथ कहै सो इकंत में जाय सरोज के पात लगावैं सरीरहिं॥
लाज के जोर न बात कहै अचरा सौं बचावति सीत समीरहिं।
जानत है रतिराज भटू द्विजराज मुखी को वियोग की पीरहिं॥३१

प्रवत्स्यत् पतिका

चलिबे की चरचा दुराय राखौ चातुरी में,
कीजै सुधि साँवरे मनोहर कलानि की।
बार बार बरजैं गरजि पथकन कौं ए,
बे गरज घन साखी कूक मुरवान की॥
सोमनाथ सुंदर समीर के परस हरें,
हिये ... मिलन म ललित लतानि की।

पावस

उत्तमा

मानु करिबे की तुम सीख सिखवति आनि,
कासौं कहैं मानु कहू मानु है री काकौ कौन।
हौं तौ ए चबाय कछू जानति न एकौ छिन,
अपनी ढिठाई धरि राखौ तुम अपने भौन ॥
सोमनाथ प्यारे सौं वियोग ही की बात कहा,
दीसति सयानी क्यों अयानी होत गहौ मौन।
छिनु बिनु हेरैं नित हेरे से रहत प्रान,
भृकुटी मरोरि कैं घरी लौं रूठि बैठै कौन ॥२३॥

स्वप्न दर्शन

आये गुपाल सखी सपने में, समीप हमारे रतीक डरै नहीं।
हौं कितनौं समुझाइ रही तऊ लाज तैं नैन उतैं ठहरै नहीं ॥
चाइन सौं मुसकाइ कछू ललचाइ कैं वे तौ घरीक टरैं नहीं।
मैं ही अयानपन्यौ परस्यौ जु निसंक ह्वै मोहन अंक भरै नहीं॥२४

साक्षात दर्शन

बिमल दुकूल मकरंद मिली फूल माल,
कुंडल श्रवन सीस मुकुट लसातु है।
चन्द्रिका सी सरसैं सरस मुसिक्यानि महा,
सोमनाथ तैसो पट पीत फहरातु है।
करि करि पान रूप मधुर पियूष आछैं,
लोचन चकोरनु कौ मोद उफनातु है।

ब्रजचंद जू कौ मुख चंद अवलोकि आजु,
शरद कौ चंद हू चल्यौ सौ चल्यौ जातु है ॥३५॥

दृष्टानुराग

वंसीवट पनघट अबहीं गई ही आछें,
मेरे आगें बोलति हँसति सखियान में।
आइ गयौ औसर ही अचका कन्हाई तहाँ,
सजें फूल माल मंजु, मोर पखियान में।
सोमनाथ बानिक बिलोकि छबि छाकी छकी,
दीन्हीं अँचि गाँसी पंचबान बखियान में।
गागरि गिराय बिसराइ कुल कानि ग्वालि,
ल्याई भरि मोहन को नेह अँखियन में ॥३६॥

ललित हाव

साजिकैं सिंगार रति मन्दिर पधारी त्योंहीं,
अंगनि तें महकैं सुगंध गति न्यारी कौ।
सटकारे बारनि के भार लचकति लंक,
औचक परति सुनि बोल धुनि नारी कौ॥
कंचन तें चपल छबीले दृग सोमनाथ,
रंचक निहारि मन हर्यौ गिरिधारी कौ॥
मंद मंद चलनि गयंदन कौं गरद करैं,
मंद करै चंदहिं अमंद मुख प्यारी कौ ॥३७॥

पावस

बादर उतंग अति डोलत उमंग भरे,
बकुल कतार दंत दीरघ सँवारे हैं।
चरखी तड़ित अरु चमकि गरज मंजु,
बरसत नीर मिस मद के पनारे हैं॥
सोमनाथ प्यारे नंद नंद कौ बिरह जानि,
ब्रज ने अनंग पै हजार कहकारे हैं।
ए घन कारे मैं बिचारि उरधारे अरी,
कारे रंग वारे ये मतंग मतवारे हैं॥३८॥

घोरत घुमंड घन सघन तड़ित संग,
त्रिविधि समीर वर तीर से सनसनात।
सोमनाथ कहै वन बोलत बिहंग पुंज,
मंजु भये भ्रमर कदंब बन भनभनात॥
कछू न सुहात अकुलात निसि द्यौस जात,
बूँद परैं गात तातें तये से छनछनात।
कैसें ब्रजनाथ विनु पावस वितैये जहाँ,
जिल्ली सों चहूँधा गन झिल्ली के झनझनात॥३९

सीतल बयारि तरवारि सी बहति तैसी,
लहकनि बेलिन की सूल सरसन लागी।
धरकति छाती घोर वन की गरज सुनि,
दामिन सी दमक दवा सी दरसन लागी।

सोमनाथ येते पै करत कमनैतीं काम,
कौन बिधि जीवौं री बिपति रसन लागी ॥
जेई पिय संग बरसति ही पियूष धार,
तेई अब घटा बिसधार बरसन लागी ॥४०॥

दिसि बिदिसान सौं उमड़ि मढ़ि लीन्हौं नभ,
छोड़ि दीन्हें धुरवा जवासे जूथ जरिगे।
डहडहे भये द्रुम रंचक हवा के गुन,
कुहू कुहू मुरवा पुकारि मोद भरिगे॥
रहि गये चातक जहाँ के तहाँ देखत ही,
सोमनाथ कहै बूँदा बाँदी हू न करिगे।
सोर भयौ घोर चहुँ ओर महि मंडल में,
आये घन आये घन आइकैं उघरिगे ॥४१॥

फुटकर

सोइबे की सौंह सी लई है निसि द्यौस अब,
औरै उर अंतर में पीर सरसानी सी।
बेरि बेरि लेटति उठति परिजंक पर,
सोमनाथ कहै अवलोकति अयानी सी॥
बरनी न जाति अलि चंद बदनी की कान्ह,
रावरी कहानी नैंकु होति सुखदानी सी।
भूख बिसरानी मुख ज्योति पियरानी कछू,
देह दुबरानी सी रहति मुरझानी सी ॥४२॥

कौन सखी है उर अंतर उपाधि नई,
संक गुरजन की निसंक तोरि नखियाँ।
भूली भूख प्यास सुख सोइबौ सहित आली,
चढ़ी जाति दीरघ उसासन सौं बखियाँ ॥
हाय क्यों न हा हा रे मैं विहारी कहि सोमनाथ,
एकौ उर आनी न सिखाइ हारी सखियाँ।
घटि जाइ तेह तौ निवटि जाँउ हेरी भट्ट,
लटि जाउ नेह ये उचटि जाउ अँखियाँ ॥४३॥

गोरी गूजरी की दसा बनति बिलोकत ही,
कही न बनति मोपै सुमति बिसाल सौं।
कहूँ डारी मटुकी अनूप भुजडाट कहूँ,
तोरि तोरि डारे कहूँ मोती कंठ माल सौं ॥
सोमनाथ बूझति तमाल तरु तालनि सौं,
हा हा कहूँ भई भेंट तुम्हें नंदलाल सौं।
पटकी अटक लोक घटकी बिसारी सुधि,
भटकी फिरति आँखें अटकी गुपाल सौं ॥४४॥

लूटि लुनाई तिहूँ पुरकी विधिजा अंगनि रीझि भरी सी।
हास बिलासन में निसिद्यौस इती जिन वैस बितीत करी सी ॥
ये ससिनाथ सुजान बिना लखिता तिय की गति हौ सु डरो सी ;
बोलति है न चितौति परी परिजंक में कंचन छीन करी सी ॥४५॥

सोमनाथ येते पै करत कमनैती काम,
कौन विधि जीवों री बिपति रसन लागी ॥
जेई पिय संग बरसति ही पियूष धार,
तेई अब घटा विसधार बरसन लागी ॥४०॥

दिसि विदिसान सौं उमड़ि मढ़ि लीन्हौ नभ,
छोड़ि दीन्हैं धुरवा जवासे जूथ जरिगे।
डहडहे भये द्रुम रंचक हवा के गुन,
कुहू कुहू मुरवा पुकारि मोद भरिगे॥
रहि गये चातक जहाँ के तहाँ देखत ही,
सोमनाथ कहै बूँदा बाँदी हू न करिगे।
सोर भयौ घोर चहुँ ओर महि मंडल में,
आये घन आये घन आइकैं उघरिगे ॥४१॥

फुटकर

सोइबे की सौंह सी लई है निसि द्यौस अब,
औरैं उर अंतर में पीर सरसानी सी।
बेरि बेरि लेटति उठति परिजंक पर,
सोमनाथ कहैं अवलोकति अयानी सी॥
बरनी न जाति गति चंद वदनी की कान्ह,
रावरी कहानी नैंकु होति सुखदानी सी।
भूख बिसरानी मुख ज्योति पियरानी कछू,
देह दुबरानी सी रहति मुरझानी सी ॥४२॥

कौन सखी है उर अंतर उपाधि नई,
संक गुरजन की निसंक तोरि नखियाँ ।
भूली भूख प्यास सुख सोइबौ सहित आली,
चढ़ी जाति दीरघ उसासन सौं बखियाँ ॥
हाय क्यों न हा हा रे मैं बिहारी कहि सोमनाथ,
एकौ उर आनी न सिखाइ हारी सखियाँ ।
घटि जाइ तेह तौ निबटि जाँउ हेरी भटू,
लटि जाउ नेह ये उचटि जाउ आँखियाँ ॥४३॥

गोरी गुजरी की दसा बनति बिलोकत ही,
कही न बनति मोपै सुमति बिसाल सौं ।
कहूँ डारी मटुकी अनूप भुजडाट कहूँ,
तोरि तोरि डारे कहूँ मोती कंठ माल सौं ॥
सोमनाथ बूझति तमाल तरु तालनि सौं,
हा हा कहूँ भई भेंट तुम्हें [illegible]
पटकी अटक लोक घटकी बिसारी छबि,
भटकी फिरति आँखैं अटकी [illegible]

साँचे भरि काढ़ी तिहूँ पुर की लुनाई लूटि,
ओपी चारु चंद की गुराई गहराति है।
सहज सुवास आस पास मँडराति आली,
साँस लेत ललकी यौं लँक लहराति है॥
बानी बिनु बारन सकै को छबि सोमनाथ,
रतिपति हू की मति हेरि हहराति है।
भावती के अंगन पै जितही परति डीठि,
तितही परवाल की घरी लौं ठहराति है॥४६॥

कुंदन के रंग अंग जोबन तरंग राजै,
उरज उतंग छीन लंक छबि देति है।
बादले की सारी मुख चंद उजियारी तामें,
न्यारी दुति दसन की हसनि समेत है॥
सोमनाथ निरखि सुजान अँगिरानी प्यारी,
ऊँचे भुज जोरि ग्रीवा मोरि हित चेत है।
मदन मलाह की सलाह सौं उछाह भरी,
ठाढ़ी रूप सागर की मानौं थाह लेति है॥४७॥

किधौं छीर सागर अपार उमग्यौ है किधौं,
दसहू दिसानु में सुधा ही बरसत है।
किधौं छिति छोर लौं बिछाए हैं रजत पत्र,
किधौं काम कीरति विलास परसति है॥

सोमनाथ किधौं यह पारधि जलज मधि,
अवनि सुहानी जग जोति सरसत है।
ताप निरवारन बढ़ावन विनोद मन,
किधौ प्यारी सुन्दर जुन्हैया दरसत है ॥ ४८ ॥

चोप सौं चटक पीतपट की निहारि छवि,
भैंटि वनमाल मिल्यौ मुरली की घोर में।
कुंडल डुलनि में घरीक घिरि रह्यौ पुनि,
बिहर्यौ चमक चन्द्रकानि छबि घोर में ॥
अलक सँभाय चारु चिंवुक कपोलन छ्वै,
सोमनाथ नैकु भ्रम्यौ भृकुटी मरोर में।
बिचर्यौ न फेरि मन मेरौ रिझवार आली,
लाज दै अकोर चुभ्यौ नैनन की कोर में ॥४६॥

सुन्दर सुढार मुख सर के सिवार किधौं,
राजत सिंगार के चमर निरधर हैं।
मोहन मयूर पखवार कि जमुन चारु,
दीरघ अपार कि फनिंद परवार हैं ॥
सोमनाथ सहज सुगंध सुकवार झुके,
नंद के कुमार री निहार इक बार हैं।
तिमिर के तार हैं बसीकरन हार हैं,
काम करतार हैं कि प्यारी तेरे बार हैं ॥५०॥

देव नित दान अमर तिनको सरीर तुही,
वर तैं वही विधि लैं तमको हरतु है।
मित्र के उदै मैं तऊ सोभनि रहति तव,
सोमनाथ कहै यौं विचार विचरतु है॥
रैनि दिन जागत नलागत पलक पल,
बिथा के परस तैं न कहूँ ठहरतु है।
तेरे मुख चंद सम ह्वैवे कों अखंड ज्योति,
प्यारी ससि भाँवरि सुमेरु की भातु हैं॥५२॥

सुन्दर सलिल आछे अंगनि में भरे और,
गहगहे रूप चहूँ ओर दरस्यौ करौ।
धुरवा बिखेर घूमघार से 'अनंत चारु,
अंबर से भूमि अवनी कौ परस्यौ करौ॥
सोमनाथ बरनै गरजि निसि वासर हूँ,
मन मंझि नेम सौं मनोज सरस्यौ करौ।
औसर पै बरसैं बड़ाई होति मेघन की,
औसर बिसारि बरस्यौ तो बरस्यौ करौ॥५३॥

छीर निधि नद नंद नंद को हितू है और,
इंदिरा को सोदर विभावरी को नाह है।
सेकर को तिलक अमंद सुधा मंदिर है,
सीतल जुन्हा सौं बिदारै दुखदाह है॥

अति ही उदार करतार नै रच्यौ है पुनि,
पैज करि पूरौ मुनि मंडित उछाह है।
सोमनाथ बरणौ समत्थ इमि चंद तऊ,
केवल चकोरहिं बिलोकिबे की चाह है ॥५३॥

सोने सौ सरीर तामैं आसमानी रंग चीर,
औरै ओप कीन्हीं रवि रतन तरौना द्वै।
सोमनाथ कहै इन्दिरा सी जगमगे बाल,
गाढ़े कुच ठाढ़े जनु ईश जुग मौना द्वै॥
कारी घुँघरारी मंद पवन झकोर लागैं,
फरहरैं अलक कपोलन के कोना छ्वै।
सो छबि अनिद मनौ पान सुधा बिन्दु करि,
इंदु मधि खेलत फनिन्दन के छौना द्वै ॥५४॥

राखति न तिनके परोसिन पाप कहूँ,
काहू समै भूलै हूँ जो नाम मुख ते कहैं।
पंचमुख करिकैं पठावत महेस पुर,
जो नर हुलासन सौं न्हात करि टेकहैं॥
सोमनाथ कहैं अरे सुन्दर तरंगे गंगे,
बूझत तुम्हैं ऐसैं संसय अनेक हैं।
केते तो मैं बैल अरु फणीन्द्र चन्द्र कला केतीं,
केती मुंडमाल औ बघंबर किलेक हैं ॥५५॥

निरखन कौं तिय बदन छबि, पठई डीठि मुरारि।
उत ह्वाँ चपल समीर ने, घूँघट दियौ उघारि ॥१६॥
ईघन अब न बसाइगी, जिन सोखे तुव सोत।
सो मैं पूजति प्रेम करि, भये अगस्त उदोत ॥१७॥
बिरह दयौ सु भली करी, हमैं छबीले लाल।
टरैं न छिन भरि दृगनि तें, उनके रूप रसाल ॥१८॥
आपु कलंकी ह्वै रहे, मृग कौं दियौ अनंद।
निपुन बचन प्रतिपाल कौ, अजौं कहावत चंद ॥१९॥
सिगरी निसि नव कमल में, कीन्हें रह्यौ निकेत।
निरख्यौं तऊँ भयौ नहीं, स्यामल मधुकर सेत ॥२०॥
पूछति सखीन ही ये समुझि, नहिं रँग अंतर मूल।
हँसति हथेरी पै लियैं, तिय गुलाब कौ फूल ॥२१॥
लखिये पिय निसि नवल में, कौतुक सुख सरसात।
हिमकर अरु तिय बदन में, अंतर लह्यौ न जातु ॥२२॥
कैसें रँग बरनन करौं, प्रीतम नंदकुमार।
झनकत जान्यौ तिय हियैं, सुबरन हिमकर-हार ॥२३॥
वंदन की वेंदी नहीं, क्यों अलि करति विचार।
परगट भयौ सुहाग यह, तिय के ललित लिलार ॥२४॥
तिय में इतौ न रूप तन, थिर न चञ्चला होति।
मंदिर में मनिमान यह, जगमग जगमग होति ॥२५॥